HUMAN RIGHTS WATCH

दो तरफा बंदूकों के बीच

भारत के माओवादी संघर्ष में सामाजिक कार्यकर्ताओं पर हमले !

HUMAN RIGHTS WATCH

"दोतरफा बन्दूकों के बीच में"

माओवादी संघर्ष में सामाजिक कार्यकर्ताओं पर हमले

कॉपीराइट © 2012 ह्यूमन राइट्स वॉच
सर्वाधिकार सुरक्षित
संयुक्त राज्य अमरीका में प्रकाशित
आईएसबीएनः 1-56432-921-6
आवरण का डिज़ायन राफ़ैल जिमेनेज़ ने तैयार किया

ह्यूमन राइट्स वॉच विश्व भर में लोगों के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है. हम भेदभाव रोकने, राजनीतिक स्वतंत्रता बनाए रखने, युद्ध के समय लोगों को अमानवीय स्थिति से बचाने और अपराधियों को न्याय के कठघरे तक पहुँचाने के लिए पीड़ितों और कार्यकर्ताओं का साथ देते हैं. हम मानवाधिकार हनन के मामलों की जाँच करके उन्हें उजागर करते हैं और इसका दुरुपयोग करने वालों की जवाबदेही सुनिश्चित कराते हैं. हम सरकारों और उन सभी को जो सत्ता में हैं, चुनौती देते हैं कि उत्पीड़न की कार्रवाइयों पर रोक लगाएँ और अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून का सम्मान करें. हम सार्वजनिक एवं अंतर्राष्ट्रीय समुदायों को सहयोग देते हैं कि वे सबके लिए मानवाधिकार सुनिश्चित करा सकें.

ह्यूमन राइट्स वॉच एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन है जिसके 40 से अधिक देशों में कर्मचारी हैं. उसके कार्यालय ऐम्सटर्डम, बेरुत, बर्लिन, ब्रसेल्स, शिकागो, जिनेवा, गोमा, जोहानसबर्ग, लंदन, लॉस एंजेलेस, मॉस्को, नैरोबी, न्यूयॉर्क, पैरिस, सैन फ़्रांसिस्को, टोकियो, टोरोंटो, ट्यूनिस, वॉशिंगटन डीसी तथा ज़ूरिख में स्थित हैं.

अधिक जानकारी के लिए कृपया हमारी वेबसाइटः http://www.hrw.org पर आएँ.

सारांश

मैं बस लोगों को यह बताना चाहता हूँ कि उन्हें अपनी जान की हिफाजत के लिए अपनी आवाज बुलंद करनी चाहिए .लोग दो तरफा बन्दूकों के बीच में फंस गए हैं .लोगों को कहना चाहिए कि इससे उन्हें तकलीफ हो रही है.

—छत्तीसगढ़ के एक मानवाधिकार कार्यकर्ता, 2011

निस्संदेह छत्तीसगढ़ के हालात किसी भी समझदार व्यक्ति के लिए तकलीफदेह हैं. हमारी निराशा इस बात से और दुगुनी हो जाती है, कि लगातार इस बात को जोर देकर कहा जा रहा है कि सरकार के सामने शासन करने का एकमात्र तरीका लोहे के मजबूत पंजे इस्तेमाल करने का है, ताकि एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाई जाए जिसमें नागरिकों के मानवाधिकारों की बात करने वाले किसी भी व्यक्ति को एक संदिग्ध और माओवादी माना जाए.

—सर्वोच्च न्यायालय, (नंदिनी सुन्दर व अन्य बनाम छत्तीसगढ़ शासन, जुलाई 2011)

लिंगाराम कोडोपी भारत के छत्तीसगढ़ राज्य में आदिवासी अधिकारों के लिए काम कर रहा था. लिंगा कोडोपी पर माओवादी, जिन्हें नक्सल या नक्सलाइट भी कहा जाता है, और स्थानीय प्रशासनिक अधिकारी सन्देह करते थे. वर्ष 2009 में पुलिस ने बिना किसी कानूनी आधार के लिंगा को एक माह से अधिक समय तक अपने कब्जे में रखा, उन्हें पीटा गया और उस पर सशस्त्र बलों में शामिल होने के लिए दबाव डाला गया. जून 2011 में माओवादियों ने लिंगा कोडोपी के नाना पर हमला किया, उनके पांव में गोली मार दी गई और उनके घर को लूट लिया गया. माओवादियों का आरोप था कि वे पुलिस के मुखबिर हैं. माओवादियों और सरकार दोनों की ओर से अपनी जान के लिए खतरा भांपकर लिंगा कोडोपी ने बस्तर छोड़कर दिल्ली आने का फैसला किया.

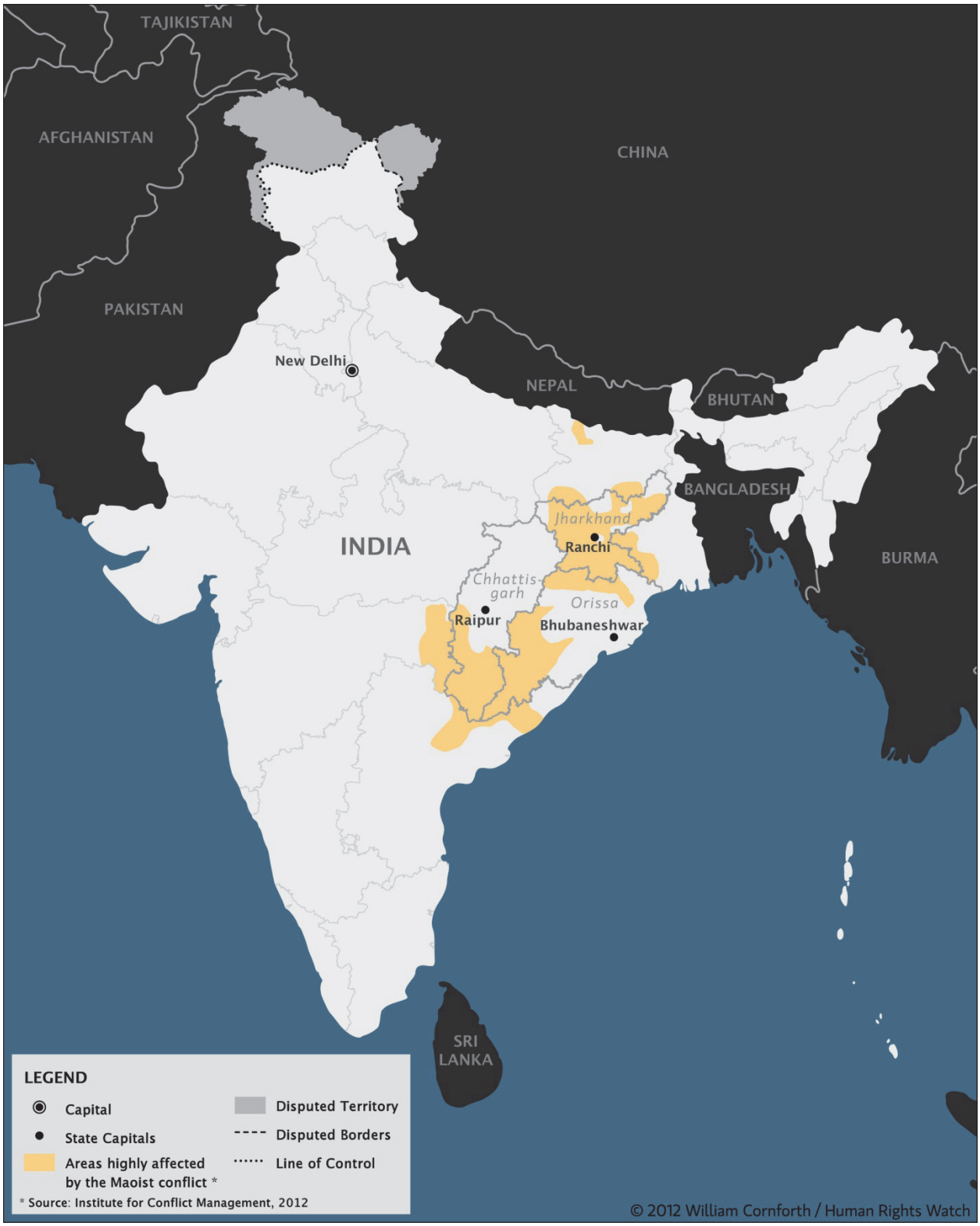
TAJIKISTAN
AFGHANISTAN
CHINA
PAKISTAN
New Delhi
NEPAL
BHUTAN
BANGLADESH
Jharkhand
Ranchi
INDIA
BURMA
Chhattis-
garh
Orissa
Raipur
Bhubaneshwar
SRI
LANKA
LEGEND
Capital
State Capitals
Areas highly affected
by the Maoist conflict *
Disputed Territory
Disputed Borders
Line of Control
* Source: Institute for Conflict Management, 2012
© 2012 William Cornforth / Human Rights Watch

“मेरे राज्य की सरकार और नक्सलियों के बीच में कोई अन्तर नहीं.” उन्होंने एक पत्रकार को बताया.

माओवाद प्रभावित क्षेत्रों में काम करने वाले, अनेकों सामाजिक कार्यकर्ता दोनों तरफ से होने वाले हमलों का शिकार हो रहे हैं. माओवादी दावा करते हैं कि वो गरीबों और हाशिए पर धकेल दिए गए लोगों के लिए लड़ रहे हैं और इसके बदले में वो गांव वालों से वफादारी और छिपने की जगह की मांग करते हैं. दूसरी ओर सरकारी सुरक्षा बल उन्हीं गांव वालों से अपने लिए समर्थन मांगते हैं और दावा करते हैं कि वे इन गांव वालों को माओवादियों से बचा रहे हैं. परन्तु गरीबों और खतरे में पड़े इन लोगों के लिए काम करने वाले सामाजिक कार्यकर्ता खुद को माओवादी और सरकार दोनों ओर से एक जैसे खतरे में डाल लेते हैं.

भारत के प्रधानमंत्री ने माओवादियों के साथ लड़ाई को ‘भारत की आन्तरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ी चुनौती’ बताया है.

गृहमंत्रालय के अनुसार वर्ष 2008 से लेकर अब तक 3000 से अधिक लोग माओवादी संघर्ष में मारे जा चुके हैं.

माओवादियों ने मानवाधिकार हनन की अनगिनत कार्रवाइयाँ की हैं. जैसे कि–निशाना लगा कर पुलिसकर्मियों, राजनैतिक कार्यकताओं और भूमि मालिकों की हत्याएँ. कुछ मामलों में माओवादी, आरोपी "शत्रुओं” को स्वघोषित जन अदालतों के सामने पेश करते हैं. माओवादी जनता को दिखाने के लिए एक मुकदमा चलाते हैं. सजाएँ बहुत कठोर होती हैं, सन्दिग्ध मुखबिरों का सिर काट दिया जाता है अथवा गोली मार दी जाती है. माओवादी नागरिक प्रशासनिक अधिकारियों और सामान्य ग्रामीणों का भी अपहरण करते हैं. मार्च 2012 में उन्होंने दो इतावली पर्यटकों और एक विधायक का अपहरण कर लिया और उन्हें बंदी बनाकर रखा. बदले में अपने माओवादी लड़ाकुओं की रिहाई की मांग रखी. अप्रैल में उन्होंने एक जिलाधिकारी का अपहरण किया और उनके अंगरक्षकों की हत्या कर दी. उन्होंने विद्यालयों और स्वास्थ्य केन्द्रों को भी सरकारी प्रतीक चिन्ह मानते हुए उन पर हमले किए.

सरकार द्वारा माओवादी खतरे के जवाब में की गई कार्रवाइयों में गम्भीर तौर पर मानवाधिकारों का उल्लघंन किया गया. सरकारी सुरक्षा बल विशेषकर पुलिस एवं अर्धसैनिक बलों द्वारा मनमाने तरीके से लोगों को गिरफ्तार किया गया, बंदी बनाया गया और उन्हें यातनाएं दी गई. जबकि ज्यादातर मामलों में पीड़ित लोग निर्दोष आदिवासी समुदाय के सदस्य थे. जब सुरक्षा बल जंगल के भीतर छिपे माओवादियोंको ढूढ़ने में नाकाम रहते हैं तब वे अपेक्षाकृत कमजोर लक्ष्य अर्थात नागरिकों, जिनको वे सन्दिग्ध माओवादी मानते हैं, उन पर हमला कर देते है. अनेकों मामलों में यह देखा गया है कि माओवादी हमलों के बाद, सरकारी सुरक्षा बलों ने क्रुद्ध होकर गांव वालों पर हमला किया और बदला लेने के लिए उनके घरों को जला दिया.

इस सबके बीच सबसे अधिक ख़तरे का सामना करते हैं वे सामाजिक कार्यकर्ता जोकि मानवाधिकार हनन की इन घटनाओं को रोकने की कोशिश कर रहे होते हैं. ज्यादातर मामलों में क्योंकि वे स्थानीय निवासी होते हैं और कार्यकर्ता के रूप में अन्दरूनी इलाकों में बसे गांवों में लोगों की मदद करने जाते है, जहां उनका सामना माओवादियों से होता है. माओवादी अक्सर इन पर मुखबिर होने का आरोप लगाते हैं और उन्हें सरकारी योजनाएं लागू करने के खिलाफ चेतावनी देते हैं. इसी के साथ पुलिस चाहती है कि सामाजिक कार्यकर्ता पुलिस के मुखबिरों की तरह कार्य करें और जो कार्यकर्ता ऐसा करने से इन्कार करते हैं, उन पर माओवादी समर्थक होने का आरोप लगाया जाता है. इस तरह संघर्ष के बीच में फंसे हुए अनेकों सामाजिक कार्यकर्ताओं को मनमाने ढंग से गिरफ्तार किया जाता है, प्रताड़ित किया जाता है, दुर्व्यवहार किया जाता है और उन्हें राजनीति से प्रेरित आरोपों का सामना करने के लिए मजबूर होना पड़ता है और उन्हें हत्या तथा राजद्रोह जैसे मामलों में फंसा दिया जाता है.

अधिकांशत: इस तरह के मामले अदालतों द्वारा खारिज कर दिए जाते हैं क्योकि सरकार के पास कार्यकर्ताओ के विरूद्ध लगाए गए आरोपों को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त सबूत नहीं होते. लेकिन इस बीच समाजिक कार्यकर्ता काफी लम्बा समय जेल में गुजार चुके होते हैं, क्योंकि उनकी जमानत की अर्जियों को अदालतों द्वारा बार-बार ठुकरा दिया जाता है.

पुलिस कई मामलों में मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को बदनाम करने के लिए उन्हें माओवादी अथवा माओवादी समर्थक सिद्ध करने का प्रयास करती है. जुलाई 2011 सर्वोच्च न्यायालय ने मानवाधिकार के विषय में बात तक करने वालों को छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा मनमाने ढंग से माओवादी समर्थक मान लेने पर गहरा दुख व्यक्त किया था.

ऐसे मामलों में परिस्थतियां तब अधिक जटिल हो जाती हैं जब कुछ कार्यकर्ता माओवादियों के लिए मुखौटे का काम करते हैं अथवा सैद्धांतिक तौर पर माओवादियों का समर्थन करते हैं. जब ऐसे व्यक्ति माओवादियों को ऐसी सूचनाएं और मदद देते हैं जिससे माओवादियों को हमले करने अथवा अन्य आपराधिक घटनाओं को अंजाम देने में मदद मिलती हो तो प्रशासनिक अधिकारियों की यह जिम्मेदारी हो जाती है कि वो ऐसे लोगों को कानून के मुताबिक गिरफ्तार कर उन पर निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार मुकदमा चलाएं.

हालांकि, प्रशासनिक अधिकारियों को हमेशा ठोस सबूतों के आधार पर यह निर्धारित करने के बाद कि ऐसे किसी व्यक्ति ने वास्तव में ही कोई आपराधिक कार्य किया है, कार्रवाई करनी चाहिए. प्रशासनिक अधिकारियों को इस पूर्वाग्रह के आधार पर किसी कार्यकर्ता के विरुद्ध कार्रवाई नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वह प्रशासन की आलोचना करता है, इसलिए उसका माओवादियों से सम्पर्क है, और इसलिए उन्हें माओवादियों के अपराध में शामिल नहीं मान लिया जाना चाहिए.

इस रिपोर्ट में ऐसे मामलों को शामिल किया गया है जहां कार्यकताओं पर माओवादियों द्वारा हमले किए गए और दूसरी ओर सरकारी सुरक्षा बलों द्वारा उन्हें मनमाने ढंग से गिरफ्तार किया गया और हिरासत में उन्हें प्रताड़ित किया गया.

* * *

12 अगस्त 2008 की रात को पुलिस ने वकील व सामाजिक कार्यकर्ता प्रतिमा दास को गिरफ्तार कर लिया. प्रतिमा दास अमरीकी पर्यावरण कार्यकर्ता डेविड पग के साथ कार में यात्रा कर रहीं थीं. वे दोनों उड़ीसा के पूर्वी हिस्से में एक जन-प्रदर्शन के कार्यक्रम में भाग लेकर लौट रहे थे पूछताछ के बाद पुलिस ने पग को जाने दिया लेकिन उन्होंने दास को रोक लिया और अंदाजा लगाया कि वे कोई माओवादी समर्थक होंगी.

उन्होंने ह्यूमन राइट्स वाच को बताया:

उन्होंने सचमुच मुझे डराने को कोशिश की. उन्होंने मुझसे कई माओवादी नेताओं और माओवादी विचारकों के बारे में पूछा मैंने कहा मेरे पास छिपाने के लिए कुछ नहीं है. मैने कहा, मेरे परिवार और मेरे वरिष्ठ वकील को सूचना दी जाए. लेकिन पुलिस ने किसी को सूचित नहीं किया, हालांकि उन्होंने मेरे मकान की तलाशी ली, मेरे मकान में उन्हें कुछ नहीं मिला. लेकिन उन्होंने मेरे भाई से एक कोरे कागज पर दस्तखत करा लिए. बाद में मुझे पता चला कि उन्होंने पहले से ही पत्रकारों से कह दिया था कि उन्होंने आज एक बड़ी माओवादी नेता को गिरफ्तार कर लिया है तथा उन्हें मेरे पास से बहुत सारा माओवादी साहित्य मिला है. लेकिन पुलिस जानती थी कि मैं निर्दोष हूँ. पुलिस ने मुझसे यह भी कहा "हम जानते हैं कि तुम किसी माओवादी वारदात में शामिल नहीं हो. लेकिन तुम माओवादी मुद्दों पर क्यों काम करती हो?"

पुलिस ने दास पर हत्या की कोशिश और आपराधिक साजिश रचने का आरोप लगाया ढाई साल जेल मे गुजारने के बाद अदालत ने सुश्री दास को सभी मामलों से बरी कर दिया.

रबीन्द्र कुमार माझी, मधुसूदन बद्रा और कंडेराम हेब्रम को पुलिस ने जुलाई 2008 में गिरफ्तार किया, पुलिस हिरासत में उनकी भयंकर पिटाई की गई और उन्हें जबरन यह ग़लतबयानी करने के लिए विवश किया गया कि वे माओवादी हैं. पुलिस ने सबसे पहले माझी को उठाया, पुलिस को संदेह था कि वह एक माओवादी हमले में शामिल है. पुलिस ने उसकी पिटाई की और कहा कि वह अपने साथियों के नाम बताए. यातनाओं से तंग आकर उन्होंने एक उड़ीसा की एक ग़ैरसरकारी संस्था, क्योंझर ग्रामीण विकास एवं प्रशिक्षण संस्थान (KIRDTI) में काम करने वाले अपने सहकर्मियों को नामजद कर दिया. मधुसूदन बद्रा, जोकि माझी का साथी है, उन्होंने बताया कि जब वह पुलिस स्टेशन गया तो उन्होंने माझी को घायल अवस्था में देखा.

"रबी को पुलिस ने बहुत यातनाएं दी थीं. उन्होंने उनके पैरों में रस्सी बांधकर उल्टा छत से लटका दिया था. पुलिस ने उन्हें इतनी जोर से पीटा कि उसकी जांघ की हड्डी टूट गई. असल में रबी को इतनी बुरी तरह पीटा गया कि उन्होंने हमारे नाम बोल दिए और तब हमें पकड़ लिया गया".

जुलाई 2008 में आदिवासियों की स्वतन्त्रता और मानवाधिकारों के हालात पर संयुक्तराष्ट्र द्वारा नियुक्त विशेष सूचनादाता जेम्स अनाया ने इस मामले में अपनी चिन्ता जाहिर करते हुए लिखा कि पुलिस द्वारा KIRDTI संस्था के सदस्यों से पूछताछ करने की योजना का संबंध इस बात से हो सकता है कि यह संस्था स्थानीय आदिवासियों के भूमि अधिकारों के लिए शांतिप्रिय और कानूनी गतिविधियां चला रही है. तथा मांझी की शारीरिक और मानसिक स्थिति हिरासत के दौरान खतरे में आ सकती है. अनाया ने इस बात पर भी चिन्ता जाहिर की कि KIRDTI के सदस्यों को पुलिस द्वारा सताए जाने के डर से छिपकर रहना पड़ रहा है. सरकार ने संयुक्तराष्ट्र के विशेष सूचनादाता की इस टिप्पणी का उत्तर यह कहकर दिया कि इन तीनों ने हिरासत के दौरान खुद पर लगाए गए आरोपों को स्वीकार कर लिया था. कुछ समय बाद वे तीनों बरी हो गए.

माओवादी होने या माओवादी समर्थक होने के आरोप में जेलों में बन्द सभी लोगों को जमानत देने में निचली अदालतों ने हिचकिचाहट दिखाई है. ऐसा व्यक्ति मुकदमा पूरा होने तक जेल में रहने के लिए बाध्य हो जाता है. और उन्हें तब तक हिरासत में रहना पड़ता है जब तक उनके मामले पर कोई फैसला न आ जाए, कभी-कभी ऐसे मामलों में सर्वोच्च न्यायलय भी मामले को वापिस नीचे भेज देता है. पुलिस भी लगातार हत्या तथा राजद्रोह जैसे गम्भीर किस्म के आरोप दायर करती रहती है. इस प्रकार के मामलों में जमानत मिलनी मुशिकल हो जाती है. ह्यूमन राइट्स कानून तंत्र इस प्रकार के कई मुकदमे लड़ रहे हैं, उनके वकील कॉलिन गोन्जालविस कहते हैं कि "इन संघर्ष क्षेत्रों में कोई जिला अदालत जमानत देने के लिए तैयार नहीं होती. कोई जज अपना कैरियर चौपट करना नहीं चाहता. यहाँ तक कि उच्च न्यायलय भी जमानत नहीं देते. इसलिए हमे सर्वोच्च न्यायलय में आना पड़ता है."

अधिकारियों ने अभियोग दायर करने के लिए उपनिवेशकाल के एक राजद्रोह संबंधी कानून का भी दुरुपयोग किया जबकि सर्वोच्च न्यायालय के 1962 के आदेश में कहा गया है कि कानून के अतंर्गत मुकदमा चलाने के लिए हिंसा भड़काने का प्रमाण मौजूद होना चाहिए. डॉक्टर बिनायक सेन को 14 मई, 2007 को गिरफ्तार किया गया और उन पर जेल में बंद माओवादी विचारक नारायण सान्याल को संदेश पहुँचाने का आरोप

लगाया गया. हालाँकि सेन का जेल जाना चिकित्सा और कानूनी सहायता पहुँचाने तक ही सीमित था और वह भी कारावास के अधिकारियों की निगरानी में होता था, किंतु उन पर दिसम्बर, 2010 में राजद्रोह का आरोप लगा और उन्हें आजीवन कारावास का दंड सुना दिया गया. सेन ने इस निर्णय के विरुद्ध अपील की. अप्रैल, 2011 में सर्वोच्च न्यायालय ने उन्हें जमानत दी और कहा कि राजद्रोह का कोई सुबूत नहीं है किंतु अभी उनके अभियोग पर कोई फ़ैसला नहीं आया है. सेन इस समय जमानत पर हैं.

कुछ अन्य मामले ऐसे भी हैं जिनमें जेल में डाल देने को कार्यकर्ताओं को डराने के लिए इस्तेमाल किया जाता है. एक कार्यकर्ता ने बताया कि पुलिस मुझे बार-बार डराती है और कहती है कि तुम बहुत बोलते हो, हम तुम्हें जेल मे डाल देंगे, वहाँ तुम हत्या का मुकदमा लड़ते रहना.

सामाजिक कार्यकर्ता हिमांशु कुमार को छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में अपने जमीनी स्तर के काम को सरकारी धमकियों के बाद बन्द करना पड़ा. हिमांशु कुमार ने स्थानीय आदिवासी कार्यकर्ताओं के साथ सरकार के खाध सुरक्षा एवं स्वास्थ्य कार्यक्रम को लागू किया. जब छत्तीसगढ़ सरकार ने वर्ष 2005 में माओवादियों के खिलाफ सलवा जुडुम की गतिविधियों को समर्थन देना शुरू किया तब हिमांशु कुमार ने सलवा जुडुम के गलत कामों के खिलाफ आवाज उठानी शुरू की. वे अपने विरोध प्रदशर्नों और मीडिया रिर्पोटों के कारण सबकी नजरों में आ गए. अचानक जिला प्रशासन ने घोषित कर दिया कि उनका जो संगठन जो दसियों वर्षो से क्षेत्र में काम कर रहा था उसका निर्माण अवैध रूप से संरक्षित वन क्षेत्र पर किया गया है. मई 2009 में पुलिस ने उनके कार्यालय की इमारत को गिरा दिया. दूसरा कोई स्थान न मिलने के कारण और अनेकों धमकियों और उनके कई साथियों की गिरफ्तारी के बाद हिमांशु कुमार दिल्ली आ गए. उन्होंने ह्यूमन राइट्स वाच को बताया:

सरकार को इसलिए गुस्सा आया क्योंकि सब लोग आकर मुझसे मिलते थे और उससे सरकार द्वारा किए गए अपराधों के बारे में सारी दुनिया को पता चलने लगा था. लेकिन, यह सब करना काफी मुश्किल काम था. मेरे साथियों को जेल में डाल दिया गया. कुछ पर हत्या के भी आरोप लगा दिए गए. बदला लेने के लिए हम पर हिंसक हमले बढ़ने लगे. मुझे लगने लगा, अब हमारी रणनीति हमारा ही नुकसान करने लगी है. लोगों की

रक्षा करने की बजाए, मैंने उन्हें और खतरे में डाल दिया. मुझे लगा दन्तेवाड़ा में काम जारी रखने से आदिवासियों पर और ज्यादा हमले किए जाएंगे. लोगों को और ज्यादा सताया जाएगा. और भी लोगों को जेलों में डाल दिया जाएगा.

अभी हाल के कुछ वर्षो में माओवादी आन्दोलन देश के मध्य और पूर्वी भागों के नौ राज्यों में फैल गया है इन हिस्सों में माओवादियों को इसलिए जन समर्थन मिल रहा है क्योंकि पीढ़ियों से खेती और जंगल के सहारे गुजर बसर करने वाले आदिवासियों को जमीनों से उजाड़ा जा रहा है और सरकारें उन जमीनों को खनन और अधोसंरचना के विकास के लिए देने के लिए बिचौलिए का काम कर रही है. रोजमर्रा की पुलिस ज्यादतियां, सरकारी काम काज में भ्रष्टाचार, जिसके कारण योजनाओं का लाभ जनता तक नहीं पहुंच पाता तथा संसाधनों तक लोगों की पहुंच न होने जैसे कारणों से माओवादियों को लोगों का समर्थन मिलता है और माओवादियों के इस दावे को बल मिलता है कि वे लोगों के अधिकारों को रक्षा के लिए लड़ रहे हैं. भारत की केन्द्र सरकार यह जानती है कि इस असमानता और दमन के कारण यह संघर्ष और अधिक भड़क रहा है. सितम्बर 2011 में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने माओवाद प्रभावित जिलों में विकास परियोजनाओं को तेजी से लागू करने के बारे में अधिकारियों की बैठक में कहा, कि "इन योजनाओं को जमीन पर भी दिखाई देना चाहिए न कि सिर्फ कागजों पर. माओवाद प्रभावित क्षेत्रों में विकास की आवश्यकता पर एक बारे चर्चा के दौरान गृह मंत्री श्री पी चिदम्बरम ने कहा कि "वामपंथी उग्रवाद भारत के लिए सबसे भयानक चुनौती है."

माओवादी भी इस तथ्य से वाकिफ हैं कि सरकार की विकास योजनाओं के कारण उनके आन्दोलन के प्रति लोगों के समर्थन में कमी आ सकती है. माओवादी सक्रिय रूप से ऐसे कार्यक्रमों का विरोध करते हैं इसलिए वे विकास के काम में लगे हुए लोगों पर हमले करते हैं, जिनमें सामाजिक कार्यकर्ता भी शामिल हैं. माओवादी चेतावनियां मौखिक रूप से या प्रमुख स्थलों पर पर्चे चिपका कर दी जाती हैं.

भारत अपने सामाजिक कार्यकर्ताओं और संगठनों पर न्यायोचित तौर पर गर्व करता है. वर्ष 2012 में संयुक्तराष्ट्र की मानवाधिकार परिषद में अपनी वैश्विक सामयिक समीक्षा प्रस्तुत करते हुए सरकार ने सामाजिक संगठनों के साथ अपनी साझेदारी का जोरदार वर्णन किया है. अपनी वर्ष 2010 की पिछली वैश्विक सामयिक समीक्षा पर मिले सुझावों

का उत्तर देते हुए सरकार ने कहा है, "विभिन्न विभाग और मन्त्रालय राष्ट्रीय सामाजिक संगठनों को यथोचित रूप से योजनाओं के निर्माण, क्रियान्वयन एवं समीक्षा की प्रक्रिया में भागीदार बनाती हैं....हम इस तरह की प्रक्रिया में राष्ट्रीय सामाजिक संगठनों की भागीदारी को जारी रखेंगे."

भारत में मानवाधिकार कार्यकर्ता तथा अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओं के सरंक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून भी लागू है. विशेषत: "अन्तर्राष्ट्रीय, सामाजिक एवं राजनैतिक अधिकार-समझौता जिस पर कि भारत ने वर्ष 1979 में हस्ताक्षर किए थे. यह भारत में भी लागू है. यह समझौता सभी नागरिकों को मनमानी गिरफ्तारियों, हिरासत व पक्षपातपूर्ण मुकदमों, प्रताड़ना एवं अन्य दुर्व्यवहार तथा जबरन गायब कर देना व मनमाने ढंग से जीवन समाप्त कर देने के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करता है. इसी के साथ-साथ सभी नागरिकों की तरह उन्हें भी अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार, संगठन बनाने का अधिकार एवं शांतिपूर्ण सभाएं करने का अधिकार प्राप्त है.

संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के वर्ष 1999 के घोषणा पत्र में कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को मानवाधिकारों के संरक्षण और उनको लागू करवाने के लिए संघर्ष करने, इन बुनियादी अधिकारों को लागू करवाने के लिए शांतिपूर्ण ढंग से गतिविधियां चलाने तथा अपनी इन गतिविधियों के कारण खुद को मिलने वाली धमकियों, बदले की कार्रवाइयों और दबावों से बचाव का अधिकार प्राप्त है.

लेकिन वास्तविकता में भारत कार्यकर्ताओं का संरक्षण करने में विफल रहा है. अनेकों कार्यकर्ताओं की आवाज को दबाने के लिए उन्हें धमकियां दी जाती हैं.

संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के लिए नियुक्त विशेष सूचनादाता मार्गरेट सेकाग्या ने जनवरी 2000 में अपने भारत दौरे के दौरान कहा कि "भारत में मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को बदनाम करने और उनके विषय में पूर्वाग्रहों का निर्माण करने की प्रवृत्ति पर हमें गहन चिन्ता है". और उन्होंने अधिकारियों से प्रार्थना की कि "वह सुरक्षा बलों को स्पष्ट निर्देश दें कि वे मानवाधिकार कार्यकताओं के कार्यो का महत्व समझें तथा मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के अधिकारों पर हमला करने के मामलों में शीघ्र जांच की जाए व दोषियों को तुरन्त सजा दी जाए.

मानवाधिकार कार्यकर्ताओं पर हमले के मामले इसलिए और अधिक चिन्ताजनक हैं क्योंकि उसका दुष्प्रभाव केवल एक व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभावों से अधिक होता है. जब मानवीय सहायता और विकास के सहायता देने वाले कार्यक्रमों को बन्द कर दिया जाता है, या कम कर दिया जाता है, तो ऐसी सहायता करने वाले लोग अपना काम नहीं कर पाते हैं और इसका दुष्प्रभाव आम जनता पर पड़ता है. यह वही जनता होती है जिसके लिए माओवादी दावा करते हैं कि वो उनके प्रतिनिधि है और सरकार कहती है कि वो उनकी मदद करने की कोशिश कर रही है. और जब मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को खामोश कर दिया जाता है तो सरकार और माओवादी दोनों को ही मानवाधिकार हनन करने का निर्बाध मौका मिल जाता है.

मुख्य सुझाव

भारत सरकार के लिए सुझाव

- सामाजिक कार्यकर्ताओं के मानवाधिकार हनन के आरोपों की तुरन्त और पारदर्शी जांच कराई जाए और दोषियों को कानून के मुताबिक सजा दी जाए. मानवाधिकार दमन के मामलों में बड़े पुलिस अधिकारियों और प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा उचित कदम न उठाए जाने के मामलों की जांच की जाए और ऐसे जिम्मेदार अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई की जाए. ऐसे दोषियों के खिलाफ कार्रवाई में, उन्हें नौकरी से हटाया जाना और उन पर आपराधिक मुकदमा दायर करना जैसे कदम शामिल हैं.

- पुलिस को निर्देश दिए जाएं कि वह मनमाने ढंग से लोगों को बंदी बनाना बंद करे. तथा इस मामले में सर्वोच्च न्यायलय द्वारा जारी डी के बासू दिशा निर्देश का पालन किया जाए. इन दिशा निर्देशों की अवहेलना करने वाले पुलिस अधिकारियों के खिलाफ अनुशासनिक कार्रवाई की जाए.

- राजनीति से प्रेरित होकर झूठे मुकदमे दायर करना बन्द किया जाए तथा अभियोजकों को निर्देश दिया जाए कि बिना सबूत वाले आरोपों को वापस ले लिया जाय.

- राष्ट्रीय और राज्य स्तर के अधिकारियों को निर्देश दिए जाएं कि सरकार की आलोचना करने वाले समाजिक कार्यकर्ताओं को माओवादी समर्थक न माना जाए. अधिकारियों को निर्देश दिया जाए कि वे मानवाधिकार संगठनों और कार्यकर्ताओं पर सार्वजनिक तौर पर माओवादियों के साथ उनके संबंधों का निराधार आरोप न लगाएँ. क्योंकि इस तरह के आरोपों से कार्यकर्ताओं का कार्य दुष्प्रभावित होता है और इनका व्यक्तिगत जीवन भी खतरे में पड़ जाता है.

- उपनिवेशवादी काल के राजद्रोह कानून को रद्द किया जाए और सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों के विपरीत राजनैतिक विरोधियों को खामोश करने के लिए इस कानून का प्रयोग बन्द किया जाए. राजद्रोह के सभी लंबित मामलों को समाप्त किया जाए.

- भारतीय काम्युनिस्ट पार्टी के लि (माओवादी)ए सुझाव:

- माओवादी प्रभाव वाले क्षेत्र में माओवादियों को सार्वजनिक रूप से यह घोषित करना चाहिए कि वे अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार मानकों का सम्मान करते हैं तथा लोगों को संगठन बनाने और अपनी बात कहने का मौका देते है.

- स्कूलों और अस्पतालों पर हमले बन्द करें .

- सरकारी विकास कार्यो में लगे लोगों पर बदले की कार्रवाइयाँ बन्द की जाएँ .

- विकास कार्यों पर लगाई गई रोक समाप्त की जाए क्योंकि इससे हाशिए पर आए और वंचित तबकों को नुकसान होता है.

कार्य प्रणाली

इस रिर्पोट को तैयार करने का मूल विचार तब आया जब झारखंड राज्य के रांची में जमीनी स्तर के कार्यकर्ताओं के एक प्रशिक्षण कार्यक्रम में ह्यूमन राइट्स वाच के कार्यकर्ता भी मदद हेतु शामिल हुए. इस कार्यशाला में सत्तर से अधिक ऐसे कार्यकर्ता व पत्रकार भी शामिल हुए जो स्वतन्त्र रूप से या ग़ैरसरकारी संगठनों के साथ काम करते हैं. लगभग सभी कार्यकर्ता छत्तीसगढ़, झारखंड और उड़ीसा के भीतरी क्षेत्रों में काम करने वाल जमीनी स्तर के कार्यकर्ता थे जो कि स्वास्थ्य, शिक्षा, आजीविका, पर्यावरण संरक्षण और आदिवासी अधिकारों के मुद्दों पर काम करते हैं. इनमें से किसी भी कार्यकर्ता ने इससे पहले अवैध गिरफ्तारी, प्रताड़ना और फर्जी मुठभेड़ की किसी घटना को कभी भी लिपिबद्ध नहीं किया था.

इस कार्यशाला में ह्यूमन राइट्स वाच को यह भी समझने का मौका मिला कि माओवादियों और सरकारी दमन का शिकार सिर्फ स्थानीय नागरिक ही नहीं होते बलिक इसे खुद कार्यकर्ताओं को भी झेलना पड़ता है. अपने कार्य की प्रकृति और स्थानीय समुदाय के साथ उनकी घनिष्ठता के कारण वे आसानी से क्षेत्र में आ जा सकते हैं, इसलिए माओवादी आमतौर पर इन पर मुखबिर होने का सन्देह करते हैं. जबकि सरकारी अधिकारी उनसे आमतौर पर सरकारी मुखबिर का काम करने की अपेक्षा करते हैं, अथवा मानते हैं कि वे कार्यकर्ता माओवादी समर्थक हैं. यह रिर्पोट काम के दौरान खतरे के मुद्दे पर तैयार की गई है. यह रिर्पोट मुख्यत: जुलाई 2011 से मार्च 2012 के बीच किए गए साक्षात्कारों पर आधरित है जोकि उड़ीसा, झारखंड और छत्तीसगढ़ में किए गए. हमने साठ स्थानीय निवासियों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, पत्रकारों और वकीलों से बात की जो सरकारी सुरक्षा बलों या माओवादिओं द्वारा किए गए दमन के या तो प्रत्यक्षदर्शी थे अथवा ऐसे मामलों से अच्छी तरह परिचित थे.

हमने इस रिपोर्ट में दर्ज सभी मामलों के विषय में राज्य सरकारों को उनका पक्ष बताने के लिए पत्र लिखे. लेकिन इस रिपोर्ट को लिखते समय तक हमें कोई उत्तर प्राप्त नहीं हुआ था.

इस रिपोर्ट को तैयार करने के लिए एक-एक व्यक्ति से व्यक्तिगत साक्षात्कार किया गया है. तथा जहां तक संभव हो सका है बाद में भी ई-मेल और टेलिफोन के द्वारा बातचीत जारी रखी गई है. मुख्यतौर पर यह बातचीत हिन्दी अथवा अंग्रेजी में की गई है. कुछ मामलों में मुख्य रिपोर्ट और संदर्भ सूची में से साक्षात्कार किए गए व्यक्तियों की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए उनकी पहचान छिपा दी गई है तथा प्रत्येक जगह ऐसे साक्षात्कारों को उदाहरण के रूप में प्रयोग करते समय भी हमने ऐसा ही किया है.

जिन व्यक्तियों का साक्षात्कार किया गया उन सभी को इन साक्षात्कारों का उद्देश्य, इसकी स्वैच्छिक प्रकृति तथा इस साक्षात्कार को किस तरीके से प्रयोग किया जाएगा इसकी जानकारी दे दी गई थी. साक्षात्कार में भाग लेने वाले सभी व्यक्तियों को बता दिया गया था कि वे किसी भी प्रश्न का उत्तर न देने के लिए स्वतन्त्र हैं तथा वे बीच में कभी भी साक्षात्कार को बन्द करवा सकते हैं. सभी ने मौखिक सहमति प्रदान की. किसी को भी कोई पैसा नहीं दिया गया.

उड़ीसा राज्य का नाम मार्च 2011में संविधान संशोधन के बाद अब ओडीशा हो गया है. परन्तु हमने एकरूपता बनए रखने के लिए पुराने नाम का ही प्रयोग किया है क्योंकि कुछ घटनाएं तब घटित हुई थीं जबकि नाम परिवर्तित नहीं हुआ था

माओवादियों के साथ संघर्ष

नक्सलवाद देश की आन्तरिक सुरक्षा के लिए सबसे बड़ा खतरा बना हुआ हैदेश के विकास के लि.....ए, इस पर काबू करना अनिवार्य है.

—प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह, मार्च, 24, 2010.

यह एक कठिन समय था . हमने इतने सालों तक आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा के लिए काम किया और अचानक हमें माओवादी बना दिया गया

—दुस्कर बारिक, क्योंझर, एकीकृत ग्रामीण विकास एवं प्रशिक्षण संस्थान)KIRDTI(उड़ीसा, जुलाई 31, 2011.

हाल के वर्षो में माओवादी आन्दोलन नौ मध्य और पूर्वी राज्यों में फैल गया है. माओवादी छत्तीसगढ़, उड़ीसा, आन्ध्रप्रदेश, महाराष्ट्र, झारखंड, बिहार, पश्चिम बंगाल में अच्छी खासी पैठ बना चुके हैं तथा असम, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में भी उन्होंने छिटपुट उपसिथति दर्ज कराई है.

माओवादी इस बात पर जोर देते हैं कि वे हाशिए पर धकेल दिए गए गरीबों, भूमिहीनों, दलितों और आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा कर रहे हैं. वे एक सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक ढाँचे में पूरी तरह बदलाव लाने वाली क्रांति का आह्वान करते हैं. माओवादियों का विश्वास है कि हाशिए पर धकेल दिए गए ये समुदाय अपने लिए सम्मान और अपने अधिकारों को तभी प्राप्त कर सकते हैं जबकि वो वर्तमान ढांचे पर हिंसक हमला करके उन्हें उठाकर फेंक दें.

अनेकों राज्य सरकारों ने इस चुनौती का उत्तर माओवादियों को परास्त करने के लिए की जाने वाली सुरक्षा कार्रवाइयों, स्थानीय नागरिकों को सुरक्षा देने तथा कानून व्यवस्था को बहाल करने जैसे कदम उठाकर की है. इन राज्यों में पुलिस को केंद्रीय अर्धसैनिक बलों

की सहायता प्राप्त होती है. अनेकों राज्य और केंद्रीय सुरक्षा बल प्रायः संयुक्त अभियान चलाते हैं ताकि माओवादियों के छिपने के सुरक्षित क्षेत्रों को नकारा जा सके. परन्तु राज्यों द्वारा प्रभावशाली सहयोग न मिलने के कारण वर्ष 2009 में केंद्र सरकार ने सुरक्षा अभियानों के समन्वय का कार्य स्वयं अपनी हाथ में ले लिया है.

माओवादी

नक्सलवादी आन्दोलन का जन्म 1967 में हुआ जब भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) से एक माओवादी धड़ा वैचारिक मतभेदों के कारण अलग हो गया. पार्टी ने संसदीय प्रणाली और वैधानिक ढांचे में सुधार का रास्ता चुना जबकि माओवादी धड़े का विश्वास था कि हथियारबंद संघर्ष से ही सफलता मिलेगी. माओवादियों ने बंगाल के नक्सलबाड़ी क्षेत्र में अनेकों किसान आन्दोलनों का नेतृत्व किया और तबसे माओवादी कार्यकताओं को नक्सली या नक्सलवादी कहा जाने लगा. इस आन्दोलन का व्यापक रूप 1970 में समाप्त हो गया परन्तु कुछ अलग हो गए समूह अपना काम करते रहे जिनमें दक्षिण भारत में पीपल्स वार ग्रुप तथा उत्तर भारत में माओइस्ट कम्युनिस्ट सेन्टर (एमसीसी) प्रमुख हैं.

माओवादी अन्दोलन के नेता अपने कार्यो को "जनयुद्ध” बताते हैं जोकि विकास योजनाओं, भू-अधिग्रहण अथवा शोषण से पीड़ित लोगों द्वारा विरोध के रूप में लड़ा जा रहा है.

सत्ता में बैठे लोग भी हाशिए पर धकेल दिए गए लोगों द्वारा झेली जा रही मुशिकलों से सहमत हैं. उदाहरण के लिए प्रधनमन्त्री ने बार-बार समता मूलक विकास की जरूरत पर जोर दिया है और कहा है: "कि हमारे कार्यक्रम और नीतियां इस क्षेत्र (नक्सलप्रभावित) के लोगों के लिए समतामूलक विकास लाने वाली होनी चाहिए तथा विकास ऐसा हो जिसका इन लोगों के लिए कोई अर्थ हो”.

माओवादी पार्टी के भीतर दो हिस्से होते हैं. एक राजनैतिक हिस्सा और दूसरा सशस्त्र हिस्सा. एक राष्ट्रीय स्तर की केंद्रीय समिति, राजनैतिक पक्ष का नेतृत्व करती है. सैन्य कार्रवाइयाँ, भूमिगत ग्राम्य समितियों द्वारा की जाती हैं. आन्दोलन की विचारधारा ग्राम स्तरीय सभाओं, सामुदायिक संगठनों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों के जरिए लोगों तक

पहुंचाई जाती हैं. विचारधारा का प्रचार जनसभाओं, भाषणों और स्कूलों द्वारा किया जाता है.

माओवादियों की सशस्त्र ईकाई का नाम पीपुल्स लिब्रेशन गुरिल्ला आर्मी (PLGA) है. अन्य छोटे लड़ाकू दस्ते भी युद्ध कार्रवाइयाँ करते हैं. महिलाएँ भी हथियार बन्द दस्ते में शामिल होती हैं. माओवादी बच्चों को भी सैनिकों के रूप में भर्ती करते हैं. पुलिस और सरकारी अधिकारियों की हत्या करना, स्कूल और अस्पतालों पर हमले करना, पैसा वसूली करना, प्रताड़ित करना तथा संदिग्ध मुखबिरों व वर्ग शत्रुओं की हत्या करना तथा स्थानीय समुदाय से भोजन व छिपने की जगह की मांग करना इनकी रणनीति का हिस्सा है. अभी हाल ही में सरकारी अधिकारियों के अपहरण पर भारत के गृहमंत्री के इस कथन पर कि विकास कार्यों का रोकने के लिए माओवादी आतंकी कार्रवाइयाँ कर रहे हैं. माओवादियों ने एक बयान जारी कर उसमें दावा किया कि आदिवासियों और पीड़ित जनता की अपनी लम्बे समय से न सुनी जाने वाली शिकायतों को सुनाने के लिए ये गिरफ्तारियां की गई थीं.

माओवादियों की कार्रवाइयों के लिए माओवादी असर वाले क्षेत्रों में जबरन वसूली तथा अनाधिकारिक कर वसूली की जाती है. तहलका के साथ अपने एक इन्टरव्यू में माओवादी नेता किशनजी ने पार्टी के वित्तीय स्रोतों के बारे में पूछे जाने पर कहा हम बड़ी कम्पनियों और बुर्जुआ लोगों से कर वसूली करते हैं, लेकिन यह किसी भी तरह से बड़ी कम्पनियों द्वारा राजनैतिक पार्टियों को दिए जाने वाले पैसे से अलग नहीं है.....ग्रामीण भी अपनी मर्जी से एक साल में दो दिन की कमाई का पैसा पार्टी को दान देते है.

जून 2009 में सी पी आई (माओवादी) को भारत सरकार ने गैर कानूनी गतिविधियां निरोधक कानून के अन्तर्गत प्रतिबंधित कर दिया. परन्तु अन्य कुछ संगठन जैसे कि क्रांतिकारी किसान समिति, महिला मुक्ति मंच, चेतना नाट्य मंच, चासीमुलिया आदिवासी संघ तथा रेव्यूलूश्नरी पीपल्स कमेटी को भी सुरक्षा बलों द्वारा अक्सर माओवादी समर्थक संगठनों के रूप में संदेह की दृष्टि से देखा जाता है.

माओवादियों ने इतालवी पर्यटकों तथा आदिवासी विधायक झिना हिकाका की रिहाई के बदले में पन्द्रह चासीमुलिया आदिवासी संघ के सदस्यों तथा अपनी पार्टी के बारह सदस्यों की रिहाई की मांग रखी थी.

सरकारी कार्रवाइयाँ

वर्ष 2006 में कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व में बनी सरकार ने माओवादियों के नए उभार से दो पक्षीय रणनीति के द्वारा निपटने का फैसला किया.

पहला, सरकार आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के कार्यक्रमों द्वारा लोगों का समर्थन जीतेगी. दूसरा, माओवादियों का सामना करने के लिए सुरक्षा बलों को लगाया जाएगा. सरकार ने हजारों की संख्या में केन्द्रीय अर्ध सैनिक बल जैसे कि- केन्द्रीय रिजर्व पुलिस फोर्स (सी आर पी एफ) और सीमा सुरक्षा बल (बी एस एफ) राज्यों की पुलिस की मदद करने के लिए भेजे हैं.

सरकार ने सेना भेजने की मांग को ठुकरा दिया है. हालांकि सेना द्वारा इन सुरक्षा बलों को गुरिल्ला युद्ध का प्रशिक्षण दिया जा रहा है. वर्ष 2008 में सरकार ने कमांडो बटालियन फार रेजोल्यूट ऐक्शन (कोबरा) का गठन किया. कोबरा में दस बटालियन (लगभग दस हजार सैनिक जोकि विशेष बलों के प्राशिक्षित तथा आन्तरिक सुरक्षा व जंगल लड़ाई में माहिर होते है. यह सी आर पी एफ का अंग होते हैं.

छत्तीसगढ़ में वर्ष 2005 में सरकार ने एक योजना के तहत नागरिकों के द्वारा माओवादियों से लड़ने की योजना तैयार की ताकि तथा कथित माओवादी समर्थक गांवों के विरूद्ध कार्रवाइयाँ की जा सके. वर्ष 1861 के कानून द्वारा सरकारों को विशेष पुलिस अधिकारियों के रूप में नागरिकों की भर्ती का अधिकार दिया गया है. सारांश यह है कि इन पुलिस अधिकारियों को आम पुलिस वालों जितने ही अधिकार प्राप्त थे, परन्तु उन्हें पर्याप्त प्रशिक्षण नहीं दिया गया. सलवा जुडुम के सभी समथर्क माओवादियों के खिलाफ इस क्षेत्र के बारे में अपनी जानकारी का प्रयोग करना चाहते थे

सलवा जुडुम और ये विशेष पुलिस अधिकारी मानवाधिकार हनन के कई गंभीर मामलों के लिए जिम्मेदार थे. सुरक्षा बल गाँवों पर छापे के दौरान प्रायः सलवा जुडुम सदस्यों के साथ शामिल होते थे. इनका अभिप्राय माओवादी समर्थकों की पहचान करना और उनका समर्थन करने के संदिग्ध ग्रामवासियों को गाँवों से बाहर निकालना होता था. सलवा जुडुम और विशेष अधिकारी निवासियों को सलवा जुडुम का साथ देने और सरकारी शिविरों में जाने के लिए बाध्य करने हेतु धमकियाँ, पिटाई, मनमाने ढंग से गिरफ़्तारियाँ, हत्याओं, और गाँवों को जलाने जैसे कार्यों में संलग्न रहते थे. वे शिविर के निवासियों पर, जिनमें बच्चे भी शामिल थे, सलवा जुडुम की गतिविधियों में भाग लेने के लिए जोर डालते थे और जो इससे इनकार करते थे उन्हें पीटते थे और उन पर जुर्माना लगाते थे. हज़ारों ग्रामवासियों को वहाँ से हट कर सरकारी शिविरों में जाना पड़ा. कई अन्य भाग कर पड़ोसी आंध्र प्रदेश राज्य के जंगलों में चले गए.

जुलाई, 2011 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक जनहित मुकदमे में सलवा जुडुम को इस आधार पर भंग करने का निर्देश दिया कि वह असंवैधानिक है. उसमें सरकार को आदेश दिया गया कि "वह माओवादी/नक्सलवादी गतिविधियों को रोकने, उन पर नियंत्रण पाने या उनका मुकाबला करने के लिए विशेष पुलिस अधिकारियों का किसी भी गतिविधि, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष, में इस्तेमाल करने से बाज आए".

इस बात को स्वीकार करते हुए कि वह सुरक्षा बलों पर बहुत अधिक निर्भर है और जन आक्रोश की जड़ में जा कर स्थिति सुधारने के उनके प्रयास पर्याप्त नहीं हैं, केंद्र सरकार ने हाल ही में तैनाती पर अधिक ध्यान केंद्रित करना प्रारंभ कर दिया है. माओवादियों की बहुलता वाले इलाकों में विकास कार्यों में तेजी लाने के लिए आयोजित सरकारी अधिकारियों की सितंबर, 2011 में आयोजित एक कार्यशाला को संबोधित करते हुए प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने माना कि निर्धनता, उपेक्षा एवं उत्पीड़न इस संघर्ष को और बढ़ा रहे हैं. उन्होंने कहा कि "नीतियाँ जमीनी स्तर पर टिकाऊ होनी चाहिएं केवल कागज पर ही नहीं...प्रेरित करने के लिए हमें विश्वसनीय होना होगा, और विश्वसनीय होने के लिए हमें भरोसे के लायक होना होगा, और भरोसे के लायक बनने के लिए हमें सच्चा होना होगा".

2011 में गृह मंत्रालय ने भी कुछ ऐसे ही मुद्दे उठाए. उसकी वार्षिक रिपोर्ट में कहा गयाः

> वामपंथी उग्रवादी जमीनी स्तर के संचालन ढांचे में अपर्याप्त कार्यक्षमता के कारण उत्पन्न रिक्तता की बदौलत सक्रिय हैं .वे स्थानीय मांगों का पक्ष ले रहे हैं और आबादी के उन वंचित वर्गों में व्याप्त असंतोष और उपेक्षा के अहसास का लाभ उठा रहे हैं...जबकि यह अनिवार्य है कि उग्रवादियों के विरुद्ध पूर्व नियोजित एवं निरंतर जारी रहने वाले अभियान की शुरुआत की जाए और इसके लिए सभी आवश्यक कदम उठाए जाएँ , यह भी ज़रूरी है कि साथ ही साथ विकास एवं संचालन के मामलों पर पूरा ध्यान दिया जाए ,विशेषकर विकास की प्रगतिशील अवस्था पर.

सरकार ने 35 सर्वाधिक उपेक्षित जिलों में विकास के प्रयास बढ़ा दिए हैं जहाँ माओवादी बड़ी संख्या में मौजूद हैं. अल्पकाल में, ध्यान शिक्षा प्राप्ति की ओर दिया जा रहा है क्योंकि अधिकांश स्कूलों ने हिंसा के डर से अपना काम बंद कर दिया है. इसके साथ ही स्वास्थ्य शिविर लगा कर और सेवाएँ बहाल कर के स्वास्थ्यसेवाओं तक पहुँच में सुधार, सड़कें एवं पुल जैसे मूलभूत ढांचों का निर्माण और मरम्मत, और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए जन वितरण व्यवस्था में सुधार पर भी ध्यान दिया जा रहा है. दीर्घकालीन योजनाओं में, केंद्र सरकार विकास नीतियों के कार्यान्वयन के लिए राज्यों को सहयोग उपलब्ध करा रही है. इनमें 'पिछड़े क्षेत्रों' को सहयोग देने के लिए विशेष कार्यक्रम, ग्रामीण रोजगार, स्वास्थ्य एवं शिक्षा, शिकायतों की सुनवाई और मूलढांचे के निर्माण के लिए विशेष कार्यक्रमों का प्रावधान है.

माओवादी इस बात पर जोर देते हैं कि जबकि असमानता एवं विकास का अभाव उनकी गतिविधियों में वृद्धि के कारण हैं, वर्तमान सरकार के प्रयास उनके 'फासीवादी दमनकारी कदमों के लिए विकास का एक मुखौटा' भर हैं. खनन कंपनियों द्वारा शुरू की गई परियोजनाएँ जिनके तहत भूमि का जबरन अधिग्रहण और ग्रामीणों का विस्थापन होता है, या जिन्हें ग्रामीणों के कल्याण को खतरे के तौर पर देखा जाता है, उनकी वजह से स्थानीय लोगों में आक्रोश पैदा हो रहा है. माओवादियों की रणनीति यह रही है कि वे दूरसंचार टावरों और सड़कों जैसी मूलभूत व्यवस्थाओं को निशाना बना कर राज्यों के विकास के प्रयासों को अवरुद्ध करें. वे पुलिस थानों, राज्यों के मूलभूत ढांचों, राजनीतिज्ञों, और जिन लोगों को वे जनता के शत्रु समझते हैं, उन पर हमले करते हैं.

कई पर्यवेक्षक इससे सहमत हैं कि माओवादी विद्रोह ने समुदायों की दुर्दशा की ओर ध्यान खींचा है और सरकार को उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के प्रयास करने को बाध्य किया है. माओवादी आंदोलन से पूर्व, आदिवासी समुदाय के सदस्यों का कहना है, उनका वनों पर न तो कोई अधिकार था और न ही कोई नियंत्रण, उन्हें अपने उत्पादन ठेकेदारों को कम कीमत पर बेचने को बाध्य होना पड़ता था और वे साहूकारों, ठेकेदारों और उन निचले स्तर के सरकारी अधिकारियों के हाथों उत्पीड़न या जबरन वसूली का शिकार होना पड़ता था जो वन क्षेत्र में आ जाते थे.

संघर्ष में मानवाधिकारों का उल्लंघन

ग्रामीण माओवादियों और सुरक्षा बलों के बीच फंस गए हैं. ये दोनों गांव के लोगों से वफादारी और जानकारी चाहते है. दोनों का दावा है कि वे स्थानीय लोगों की सुरक्षा के लिए काम कर रहे हैं लेकिन दोनों एक दूसरे पक्ष के लिए गांव वालों के समर्थन और अपने प्रति कम समर्थन के नाम पर गांव वालों के विरुद्ध कड़े कदम उठाते हैं.

सरकार ने संयुक्त राष्ट्र की मानवाधिकार परिषद के समक्ष वैश्विक सामयिक समीक्षा में कहा है कि वर्ष 2011 में माओवादियो द्वारा 464 नागरिक और 142 सुरक्षाकर्मी मारे गए. मरने वालों में अधिकतर लोग समाज के निर्धन और वंचित वर्ग से आते हैं.

इंस्टीट्यूट फ़ार कंफ़लिक्ट मैनेजमेंट के द्वारा इकट्ठा किए गए आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2010 में 1200 लोग मारे गए जिनमें आधे लोग आम नागरिक थे जबकि वर्ष 2009 में लगभग 1000 मारे गए जिनमें 391 आम नागिरक थे. गृह मंत्रालय के अनुसार 2008 से अब तक 3000 से अधिक लोग मारे जा चुके हैं.

माओवादियों के विरुद्ध सरकारी सुरक्षा बलों की कार्रवाईयों में मानवाधिकार के घोर उल्लंघन हुए हैं. गांव वाले जिनमें अधिकतर आदिवासी समुदाय से आते हैं उन्हें मनमाने ढंग से गिरफ़तार किया गया, यातनाएं दी गयीं और अवैध तरीके से उन्की हत्या की गई.

छत्तीसगढ़ में वनविलासी चेतना आश्रम (वीसीए) ने सरकारी सुरक्षा बलों के दुरव्यवहार के खिलाफ 522 शिकायतें दर्ज की हैं जिनमें हत्या, बलात्कार, पिटाई और आगजनी शामिल हैं.

स्थानीय जेल अपनी क्षमता से अधिक भरे हुए हैं क्योंकि सैंकड़ों लोगों को मनमाने ढंग से गिरफ़तार किया गया है. उड़ीसा की जेल में कम से कम 600 कैदी हैं जिनमें से अधिकतर ग्रामीण आदिवासी हैं और उन्हें माओवादी के नाम पर जेल में रखा गया है. मई 2011 में उड़ीसा उच्च न्यायालय ने गंगुला ताडिंगी और रतनु सरिका के मामले में मुआवज़े का आदेश दिया था. इन दोनों की मौत हिरासत में हुई थी और ये पाया गया था कि कैदियों की उचित चिकित्सा नहीं कराई जाती.

नक्सली लड़ाके जो घात लगा कर गश्ती सैनिकों पर हमले करते हैं और जंगल में छुपे रहते हैं उनको न पकड़ पाने के कारण सुरक्षा बलों ने माओवादियों के समर्थक होने के आरोप में आम नागरिकों के विरुद्ध प्रतिशोधात्मक कार्रवाई की. कुछ मामलों में सरकारी सुरक्षा बलों ने माओवादियों के हमले के बदले में गांव वालों की झोपड़ियों में आग लगा दी और उनकी पिटाई भी की.[i] जब मार्च 16, 2012 में सुरक्षा बलों पर टडमेतला, मोरपल्ली, और तिम्मापुरम गांव पर हमला करने, गांव वालों को मारने उनकी हत्या करने और बलात्कार का आरोप लगा तो छत्तीसगढ़ सराकरा द्वारा जांच का आदेश दिया गया. कार्यकर्ताओं ने छत्तीसगढ़ में जून 2012 में 20 लोगों की हत्या की निंदा की. आरंभ में सुरक्षा बलों ने यह दावा किया था कि उन्होंने माओवादियों को मारा है लेकिन जब बाद में यह पता चला कि मारे जाने वालों में कई लोग बेकसूर ग्रामीण थे तो गृह मंत्री पी. चिदंबरम ने कहा कि, “यदि इसमें कोई मासूम व्यक्ति मारा गया है तो मैं उनके लिए बहुत दुखी हूं”. इस मामले में जांच के आदेश दिए गए हैं और राष्ट्रीय मानवाधिकार ने विस्तृत रिपोर्ट मांगी है.

मध्य और पूर्वी भारत के सूदूर घने जंगलों में माओवादियों ने भी मानवाधिकार के गंभीर उल्लंघन किए हैं जिनमें पुलिस वालों, राजनैतिक व्यक्तियों और जमीनदारों को चिन्हित करके मारा गया है जिनके बारे में यह कहा गया कि यह सजा के पात्र हैं.

कुछ मामलों में व्यक्तिगत तौर पर लोगों को जन अदालत या जनता की अदालत के सामने लाया गया है जहां माओवादियों ने दुशमनों या गलती करने वालों को सज़ा देने के लिए जनता के सामने उनकी सुनवाई की. अमीर जमींदारों को जन अदालत के सामने लाया गया और उनसे उनकी दौलत का कुछ भाग गरीबों को देने के लिए कहा गया. जिन्होंने इनकार किया उन्हें लोगों से राय लेने के बाद मारा पीटा गया. संदिग्ध मुखबिरों

का सर काट दिया गया या उन्हें गोली मार दी गई, यह काम कभी-कभी जन अदालत में दी गई सज़ा के बाद किया गया. ये अदलातें जो कि देशी कानून के अनुसार अवैध हैं ये स्वतंत्र अंतर्राष्ट्रीय मापदंड, निष्पक्षता, न्यायधीशों की योग्यता, निर्दोष होने की परिकल्पना और अपना बचाव करने का हक देने के मामले में पूरी तरह विफल हैं.

माओवादियों ने अत्यंत क्रूरता के साथ काम किया है. अक्तूबर 2009 में उन्होंने झारखंड से पुलिस अधिकारी फ्रांसिस इंदुवर का अपहरण किया उसकी हत्या की और उनके कटे-फटे शव को राष्ट्रीय राज मार्ग पर छोड़ दिया. उसी ज़माने में महाराष्ट्र राज्य के गढ़चिरौली में माओवादियों ने जब अपने एक घाती हमले में 18 पुलिस अधिकारियों को मारा था उनके बाद उन्होंने पुलिस के एक संदिग्ध मुखबिर सुरेश अलामी का सिर काट दिया. नवंबर 2010 में झारखंड के गिरीडीह जिले में जन अदालत द्वारा एक व्यक्ति को कथित तौर पर पुलिस का मुखबिर बताकर उनके हाथ पांव काट कर एक चेतावनी भरा पोस्टर छोड़ा गया था. मार्च 2012 में माओवादियों ने दो अतालवी पर्यटकों और उड़ीसा के एक विधायक का अपहरण कर लिया और और फिरौती के तौर पर उन्होंने अपने समर्थकों की रिहाई की मांग की. अप्रैल 2012 में माओवादियों ने छत्तीसगढ़ में सुकमा जिले के जिलाधीकारी एलेक्स पॉल मेनन का अपहरण किया और इसके बदले सुरक्षा बलों के द्वारा जारी अभियान को रोकने की मांग की.

माओवादियों ने प्रायः सरकार के द्वारा विकास के प्रयत्नों का विरोध किया है और जो व्यक्ति इन योजनाओं को लागू करने की कोशिश करता है उन पर सरकारी एजेंट होने का आरोप लगाया जाता है. राज्य की पुलिस के अनुसार 2010 से अब तक उड़ीसा में कम से कम छह ठेकेदारों को मार दिया गया है जिन्होंने मूलभूत आधार वाली योजनाओं को लागू करने की कोशिश की है.

माओवादी आम नागिरकों से फिरौती की रकम, पनाह और खुफिया जानकारी मांग कर उनकी जान जोखिम में डालने के भी जिम्मेदार हैं. उन्होंने स्कूलों और अस्पतालों पर हमला किया है और प्रत्यक्ष रूप से सरकारी भवनों को निशाना बनाया और उड़ाया है. माओवादियों का दावा है कि वे सिर्फ़ उन इमारतों पर हमला करते हैं जिसे सरकारी बल इस्तेमाल में लाते हैं. लेकिन ह्यूमन राइट्स वाच के शोध यह दर्शाते हैं कि उन्होंने ऐसी

इमारतों को भी निशाना बनाया है जिनमें सुरक्षा बल वाले नहीं थे और न वे उनके प्रयोग में थे.

माओवादियों द्वारा आम तौर पर भर्ती किए जाने वाले बच्चों की आयु 6 से 12 साल है और उन्हें बाल संगम नामक संगठन के ज़रिए युद्ध अभियान के लिए भर्ती किया जाता है जहां उनमें माओवादी विचारधारा भरी जाती है, उन्हें मुखबिर के तौर पर इस्तेमाल किया जाता है और उन्हें गैरविनाशकारी हथियार (जैसे लाठी) इत्यादि से लड़ने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है. बच्चे जब एक बार सशस्त्र बल में शामिल हो जाते हैं फिर उन्हें उन्हें छोड़ने की अनुमति नहीं होती है और उन्हें न मानने की स्थिति में उन्हें कड़ी प्रतिशोधात्मक क्रिया जैसे उनके परिजनों को चुन कर मारने का खतरा रहता है.

माओवादी बंदूक और दूसरे हथियार और गोला बारूद पुलिस के शस्त्र गृह को लूट कर और हथियार के अवैध बाज़ार से ख़रीद कर हसिल करते हैं. वे ख़ुद भी विस्फोटक सामग्री बनाते और उनका प्रयोग करते हैं.

नागरिक समाज के कार्यकर्ताओं का उत्पीड़न

सरकारी सुरक्षा बलों और माओवादियों के बीच जारी सशस्त्र संघर्ष में एक बात ऐसी है जो उन्हें समान बनाती है. और वह है स्थानीय सामाजिक कार्यकर्ताओं के खिलाफ़ उनकी नफरत जो उन दोनों की नीतियों और काम की आलोचना करते हैं. दोनों ने नागरिक समाज के सदस्यों के खिलाफ काम किया है, जिसने सार्वजनिक भलाई और भय के वातावरण को खत्म करने के लिए काम करने वाले व्यक्तियों को नुकसान पहुंचाया है.

कार्यकर्ताओं का काम ही कुछ ऐसा है कि उन्हें स्वाभाविक रूप से दूरदराज के क्षेत्रों में जाना पड़ता है जहां उनका सामना माओवादियों से होता है और वह उसकी व्यावहारिक व्यवस्था करते हैं. उनका नियमित रूप से विभिन्न सरकारी अधिकारियों के साथ भी मिलना जुलना रहता है ताकि वे विकास की नीतियों को प्रभावी तौर पर लागू करने को सुनिश्चित कर सकें. इन तथ्यों के बावजूद दोनों पक्षों की ओर से उनपर मुखबिरी का इल्जाम लगता रहता है या फिर उन्हें दूसरे पक्ष का जासूस कहा जाता है.

आदिवासियों की भलाई के लिए काम करने वाली एक संस्था वनवासी चेतना आश्रम (VCA) के लिए काम करने वाले हिमांशु कुमार ने इस स्थिति को 2009 में दिए गए अपने एक साक्षातकार में इस प्रकार बयान कियाः

नक्सली हम से सतर्क रहते थे, और उनकी ओर से काम करने की कभी भी पूरी आजादी नहीं थी. वे कभी-कभी हमें रोकते लेकिन जिन लोगों के लिए हम काम करते थे हमें उनका पूरा समर्थन हासिल था, वे हमें पसंद करते थे. नक्सली वीसीए पर सरकार के साथ होने का आरोप लगाते, वे कहते, "वीसीए यहां सरकार के कार्यक्रमों को लागू कर रहा है, हम उन्हें यहां नहीं देखना चाहते हैं." लेकिन हमारे आदिवासी कार्यकर्ता हमारी तरफ़ से बोलते. "यह हमारे बच्चों के लिए हैं, तुम इन्हें नहीं रोक सकते." और नक्सलियों को समझौता करना पड़ता. अंत में उन्होंने कहा, "वीसीए राजनीतिक महत्वाकांक्षा नहीं रखती है इसलिए हम उन्हें परेशान नहीं करेंगे". सरकार का कहना है कि वनवासी चेतना आश्रम वाले नक्सल समर्थक हैं. सरकारी अधिकारी लंबे समय से भ्रष्टाचार में लिप्त हैं और हमने इसमें हस्तक्षेप किया. नक्सलियों के दृश्य में आने से

पहले से ही यहां स्कूल नदारद थे, इसलिए सरकार हमसे हमेशा से खुश नहीं है. इसीलिए वे हमें "नक्सली" कहते हैं.

माओवादियों के दुर्व्यवहार

हालांकि मानव अधिकारों के रक्षक आम तौर पर माओवादियों के सीधे हमले पर नहीं आते हैं लेकिन उनमें से कई लोगों का कहना है कि वे भय के वातावरण में काम कर रहे हैं और माओवादियों के दुर्व्यवहारों की आलोचना करने में असमर्थ हैं. कार्यकर्ता माओवादियों से डरते हैं क्योंकि उनलोगों के विरुद्ध उनकी क्रूरता का एक लंबा इतिहास है जिन्हें वे मुखबिर या अपने वर्ग का दुश्मन समझते हैं.

माओवादी अपने आलोचकों को बर्दाश्त नहीं करते हैं. जो कार्यकर्ता हत्या, जबरन वसूली, या अन्य बुराइयों के लिए उनकी आलोचना करते हैं उन्हें धमकी और चेतावनी मिलती हैं. एक स्थानीय कार्यकर्ता के अनुसार:

माओवादी लोगों को पुलिस का मुखबिर बता कर मारते हैं. उन्होंने एक एसे व्यक्ति की हत्या कर दी जो स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए अच्छा काम कर रहा था. उन्होंने कहा कि वे उन्हें इसलिए मार रहे है क्योंकि उनके पास एक सेल फोन है और इसलिए वह पुलिस का मुखबिर है. इन दिनों हर किसी के पास सेल फोन है. तो क्या वे सभी को मार डालेंगे.

माओवादी कार्यकर्ताओं की गतिविधियों पर कड़ी नजर रखते हैं. बहुत से कार्यकर्ताओं ने माओवादी की पूछताछ और उनकी धमकियों के बारे में बताया. कुछ का कहना है कि उनहें स्थानीय कमांडरों का आदेश मानना पड़ेगा कि कौन सी सरकारी सेवाएं प्रदान की जा सकती हैं. एक कार्यकर्ता ने ह्यूमन राइट्स वॉच को बताया:

हम एक बहुत ही गरीब क्षेत्र में काम करते हैं. लोग वहाँ वास्तव में पीड़ित हैं. मुझे पता था कि वहां माओवादी थे, लेकिन मैं अपना काम करता रहा और उनको नजरअंदाज करता रहा. एक दिन मुझे रोका गया. वे बहुत अच्छे और विनम्र थे. उन्होंने मेरे काम के बारे में पूछा, लेकिन तब उन्होंने मेरे परिवार और जहां हम रहते थे उसका ज़िक्र किया.

उन्होंने पुलिस के बारे में अपनी चिंताओं के बारे में बात की. मैं समझ गया कि मुझे चेतावनी दी गई थी और वे हम पर नज़र रखे हुए थे.

माओवादियों का डर इतना ज़्यादा है कि अधिकतर कार्यकर्ताओं ने उनकी धमकियों और उनके दुरुपयोग का वर्णिन करते हुए अपनी पहचान जाहिर नहीं करना चाहते. छत्तीसगढ़ के एक आदिवासी कार्यकर्ता ने कहा:

नक्सलियों ने हमारे मुद्दों पर ध्यान आकर्षित करवाया है, लेकिन हम हमेशा उनके तरीकों का समर्थन नहीं कर सकते हैं... वे हमारे लिए सिरदर्द बन गए हैं. वे ग्रामीणों को अंधाधुंध तरीके से मारते हैं. इसके अलावा उन्होंने अपनी हरकतों के कारण हमारे गांवों में पुलिस को बुलाया है. जब पुलिस आती है तो नकसली वहां नहीं होते हैं और उनके बजाय वे हमारे साथ दुरव्यवहार करते हैं.

तथ्य यह है कि माओवादी कार्यवाइयों के नतीजे में पुलिस की तलाशी और संदेह में बढौतरी हुई है. इस बात को कई दूसरे कार्यकर्ताओं ने भी कहा. उनमें से एक ने इस प्रकार समस्या का वर्णन किया:

सरकार के कार्यक्रम केवल कागज पर ही हैं, इतने सारे लोगों को आजीविका के लिए निकलना करना पड़ता है. लेकिन अब हमारे इलाके में, एक तरफ पुलिस है तो दूसरी ओर नक्सली हैं. जब गांव वाले काम के लिए निकलते हैं तो नक्सली यह कहते हैं कि "तुम पुलिस के मुखबिर हो. और पुलिस कहती है कि तुम नक्सली प्रशिक्षण के लिए गए थे.

इस रिपोर्ट के लिए साक्षात्कार किए गए कार्यकर्ताओं में कई ऐसे हैं जो दूरदराज के क्षेत्रों में ग्रामीणों को सरकार द्वारा अनुमोदित स्वास्थ्य देखभाल या खाद्य सहायता सेवाएं प्रदान करने में लगे हुए हैं. उड़ीसा से एक कार्यकर्ता ने ह्यूमन राइट्स वॉच को बताया:

हममें से जो नरेगा (राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी) के लिए काम कर रहे हैं वे हमेशा मुसीबत में हैं. एक तरफ भ्रष्ट ठेकेदारों हैं. दूसरी और नक्सली हैं. वे कुछ ठेकेदारों, जो उन्हें पैसे देते हैं उन्का समर्थन करते हैं. दूसरी ओर वे लोगों के अधिकारों के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए हमें नहीं चाहते. हमें जहां से सुरक्षा मिल सकती है वहां से हम उन्हें हासिल करते हैं. कभी पुलिस से तो कभी नक्सलियों से.

झारखंड से एक आदिवासी कार्यकर्ता ने शिकायत की कि हालांकि माओवादी और सरकार दोनो आदिवासी समुदायों की रक्षा का दावा करते है लेकिन वास्तव में वे अपने लाभ के लिए लड़ाई में लगे हुए हैं.

यह आदिवासियों की जमीन पर होने वाली लड़ाई है. सब के सब, माओवादी, सुरक्षा बल, कंपनी और सरकार अपने अपने लाभ के लिए वहां हैं. हमारे क्षेत्र में माओवादी क्यों हैं? हमारे लिए नहीं. उन्हें अपने छुपने के ठिकानों के लिए हमारे जंगल दरकार हैं. सरकार ने कभी हमारी परवाह नहीं की, लेकिन वे माओवादियों को नहीं चाहती है, इस लिए अब वे [सरकारी अधिकारी] आए हैं. और हमारी मिट्टी के नीचे जो खनिज है सबको बस उसी की फिक्र है. जब हम आदिवासियों के अधिकारों के लिए बोलते हैं तो वे गुस्सा हो जाते हैं. वे उन लोगों की परवाह नहीं करते जो वहां की जमीन पर रहते हैं.

विशेषकर झारखंड में बार बार इस प्रकार के आरोप लगते रहे हैं कि कुछ माओवादी, अथवा माओवादी होने का दावा करने वाले कुछ गुट भ्रष्टाचार में लिप्त हैं. हमने जब नियामत अंसारी (उनका उल्लेख नीचे आएगा) की हत्या की आलोचना की तो माओवादियों ने पोस्टर लगा कर जीन ड्रेज़ तथा अरुणा रॉय जैसे सम्मानित कार्यकर्ताओं और झारखंड में काम कर रहे दो कार्यकर्ताओं नंद लाल सिंह और गोकुल वर्मा की भर्त्सना की. एक अन्य पोस्टर में मांग की गई कि जिन अदालत लगा कर उन्हें दंडित किया जाए.

कार्यकर्ता यह भी शिकायत करते हैं कि कुछ नागरिक समाज गुट माओवादी उद्देश्यों के प्रचार का काम करते हैं और फिर उनका विरोध करते हैं जो माओवादी उत्पीड़न के विरुद्ध बोलता है. रांची के एक कार्यकर्ता ग्लैडसन डुंगडुंग ने, जिनका राज्य अधिकारियों के हाथों उत्पीड़न का उल्लेख नीचे आएगा, अप्रैल 2012 में लिखाः

> मानवाधिकारों के तीन प्रमुख उल्लंघनकर्ता हैं- सरकार, ग़ैर सरकारी ढांचे (माओवादी, अन्य नक्सल एवं आपराधिक गुट) और आमतौर पर समाज. हालाँकि सरकार मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए संवैधानिक तौर पर जिम्मेदार है और वास्तव में छोटी शक्तियाँ तभी उभरती हैं जब सरकार न्याय दिलाने में विफल रहती है.

किंतु इन दिनों, तथाकथित मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के लिए सुरक्षा बलों द्वारा किए जा रहे मानवाधिकार हनने के मामलों पर आवाज उठाना एक फ़ैशन बन गया है जबकि सरकार से बाहर के तंत्रों द्वारा की जा रही ऐसी ही कार्रवाइयों पर वे चुप्पी साधे रहते हैं.

> अतः यह स्पष्ट है कि वे नक्सलवादियों की ओर से भी बल्लेबाजी कर रहे हैं जैसे कि सरकार की ओर से. कारपोरेट घरानों के लिए बल्लेबाजी कौन करता है? तथाकथित मानवाधिकार कार्यकर्ताओं की इस प्रकार की कार्रवाइयाँ नागरिक समाज आंदोलन में और समस्याएँ ही खड़ी करेंगी और उनकी विश्वसनीयता पर भी सवाल उठ खड़े होंगे. परिणामस्वरूप मेरे जैसे लोगों को भी अपनी पहचान के लिए संघर्ष करना होगा.

नियामत अंसारी की हत्या, झारखंड

नियामत अंसारी जिन्होंने महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार योजना (मनरेगा) में भ्रष्टाचार की पोल खोली और जिनकी माओवादियों ने 2 मार्च, 2011 को हत्या कर दी. @2011 क्रिस्टोफ़र पायेट

झारखंड राज्य में लातेहर जिले के निवासी नियामत अंसारी ने भारत सरकार का गाँवों के निर्धन लोगों को पर्याप्त वेतन मुहैया कराने के उपक्रम महात्मा गांधी ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (मनरेगा) तक पहुँच में ग्रामीणों की सहायता की. अपने एक सहयोगी, भुखन सिंह के साथ मिल कर अंसारी ने स्थानीय ठेकेदारों के भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज उठाई जो नरेगा योजना के अंतर्गत मिले सरकारी धन का उचित वितरण कर पाने में विफल थे.

फरवरी 2009 में माओवादियों ने एक तथाकथित जन अदालत आयोजित की और अंसारी तथा सिंह पर पुलिस के प्रभाव में आ कर काम करने और क्रांतिकारी विरोधी गतिविधियों में संलग्न होने का आरोप लगाया. अक्तूबर 2010 में उनके मकानों पर हमले किए गए और पड़ोसियों को उन्हें कोई भी सहायता न देने की चेतावनी दी गई. अंसारी ने एक स्थानीय ठेकेदार शंकर दुबे की आक्रमणों के मुख्य दोषी के रूप में पहचाना. किंतु उन्होंने कुछ माओवादी लड़ाकों की भी पहचान कर ली जिन्होंने दुबे की सहायता की थी. “वे दोनों लगातार माओवादियों की धमकियों का

निशाना बन रहे थे", एक सहकर्मी ने पहचान जाहिर न करने की शर्त पर बताया. "उनके घरों पर हमले होते रहे और उन पर ताले लगा दिए गए. माओवादियों ने उन लोगों के विरुद्ध पोस्टर भी लगाए".

फरवरी 2011 में जब उन दोनों ने नरेगा में भ्रष्टाचार के मामले उजागर किए तो पुलिस ने मामले की छानबीन की. पुलिस ने कई व्यक्तियों के खिलाफ औपचारिक शिकायत दर्ज की.

अगले दिन, दो मार्च को, एक स्थानीय माओवादी कमांडर के नेतृत्व में, जिसे बाद में गवाहों ने सुदर्शन के तौर पर पहचाना, हथियारबंद लोगों के एक गुट ने अंसारी का उनके घर से अपहरण कर लिया. अंसारी को पीटा गया और घायलावस्था में छोड़ दिया गया. उनके परिवारजनों को वह मिले और बाद में अस्पताल में उनकी मृत्यु हो गई. उस महीने बाद में झारखंड नागरिक समाज के कार्यकर्ताओं की एक तथ्यान्वेषण टीम ने लिखाः

> 2 मार्च 2011 को लगभग 15-20 माओवादी गाँव में वापस आए और उन्होंने नियामत को बुरी तरह पीटना शुरू कर दिया. जब नियामत की बहन ने उन्हें बचाना चाहा तो उसे बंदूक दिखाई गई और कहा गया कि वह पीछे हटे. उसे चेतावनी दी गई कि वरना उसे गोली मार दी जाएगी. वह पास ही बैठ कर रोती रही. नियामत को देर तक लाठियों से मारने के बाद और यह देख कर कि वह अधमरे हो चुके हैं, गाँव की एक महिला से कहा गया कि वह नियामत के परिवार को सूचित कर दे, और यह बयान सुनाने को कहा गया कि 'उसे जहाँ ले जाना है ले जाओ'. उन्हें उस स्थल से कंधों पर लाद कर उनके घर लाया गया. फिर उन्हें शीघ्र ही एक चारपाई पर लिटा कर मनिका स्वास्थ्य केंद्र ले जाया गया जहाँ डॉक्टरों ने उन्हें बेहतर इलाज के लिए लातेहर अस्पताल ले जाने को कहा. एक ऐंबुलेंस में नियामत को मनिका से लातेहर अस्पताल ले जाया गया जहाँ (पहुँचने के) दस मिनट के बाद उनकी मौत हो गई. नियामत के पिता पूरे गाँव में घूम कर लोगों को एकत्र करने और सहायता मांगने का प्रयास करते रहे किंतु डर के कारण कोई भी आगे नहीं आया.

माओवादियों ने अंसारी की हत्या की जिम्मेदारी लेते हुए एक लंबे पैम्फलेट में लिखाः

> आप सब जानते हैं कि साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और 'सामंतवाद', अर्थात् वर्ग शत्रुओं के खिलाफ हमारी लड़ाई जारी है तथा नियामत और भुखन इस दृष्टिकोण से वर्ग मित्र हैं. इसलिए हमें भी दुख है कि नियामत की जान लेनी पड़ी. उसके पुलिस प्रशासन के प्रभाव में होने और जनविरोधी, क्रांतिकारी विरोधी गतिविधियों और पार्टी को चुनौती देने के बावजूद हम ने लिखित में और मौखिक रूप से उसे कई मौके दिए कि वह अपना तौरतरीका सुधार ले. उसने कोई सुधार नहीं दिखाया अतः हमें उसे मृत्युदंड देने पर बाध्य होना पड़ा.

अंसारी के परिवार ने कहा कि हत्या में आठ लोगों का हाथ था जिनमें माओवादी कमांडर सुदर्शन और ठेकेदार शंकर दुबे शामिल थे. पुलिस ने इन दोनों और परिवार द्वारा नामजद अन्य छह के विरुद्ध मामला दायर कर लिया है. दुबे ने 15 मार्च 2011 को स्वयं को पुलिस को सौंप दिया. आठ में से सात अभियुक्त हिरासत में हैं और मुकदमे की प्रतीक्षा कर रहे हैं. माओवादी नेता सुदर्शन को अभी पकड़ा जाना बाकी है.

भुखन सिंह इस समय छिपा हुआ है क्योंकि उसे आशंका है कि उसे भी निशाना बना लिया जाएगा. माओवादियों ने चेतावनी जारी की जिसमें कहा गया हैः "हम अब भी भुखन को अवसर दे रहे हैं कि वह स्वयं को सुधार ले, लेकिन इस शर्त पर कि वह जन अदालत में पेश हो, अपनी गलती माने, क्षमा मांगे और वचन दे कि वह सुधर जाएगा".

सिस्टर वालसा जॉन की हत्या, झारखंड

सिस्टर्स ऑफ चैरिटी की एक नन वालसा जॉन, पिछले कई वर्षों से झारखंड के आदिवासियों के लिए काम कर रही थीं, विशेषकर उनके लिए जो खनन अभियान के कारण विस्थापित हो गए थे. 15 नवम्बर 2011 को पारकुर जिले में लगभग 50 लोगों का एक समूह, जिसमें रिपोर्टों के अनुसार 30 माओवादी भी थे, उनके मकान में घुस आया और उनकी हत्या कर दी. पुलिस का मानना है कि इस हमले का जो कारण तत्काल नजर आ रहा है वह है सिस्टर जॉन को एक बलात्कार की शिकार महिला को पुलिस के पास जा कर शिकायत दर्ज कराने में सहायता देने से रोकना. यह मामला

ग्रामीण अदालत से बाहर ही सुलझा लेना चाहते थे किंतु उनकी व्यापक गतिविधियाँ मुद्दा बन गई थीं.

दुमका के महानिरीक्षक अरुण ओराँव के अनुसार, "माओवादी एक खनन कंपनी से पैसा वसूली के लिए पाकुर में पैठ बनाना चाहते हैं. विद्रोहियों ने हालाँकि, उन्हें मारने के लिए बंदूकों का इस्तेमाल नहीं किया. उन्होंने गाँव वालों को ऐसा करने दिया ताकि वे एक संदेश छोड़ सकें कि यदि माओवादी किसी व्यक्ति का अनुमोदन न करें तो वालसा जैसी प्रभावशील व्यक्ति भी मारी जा सकती हैं".

माओवादियों ने सिस्टर जॉन की हत्या में अपनी भूमिका स्वीकार की. बीबीसी के साथ एक इंटरव्यू में प्रवक्ता सोमनाथ ने बिना इस बात का कोई आधार बताए कहा कि सिस्टर जॉन खनन कंपनियों के 'हितों के लिए काम कर रही थीं'. उन्होंने कहा कि क्योंकि उन्होंने 'आदिवासियों का भरोसा तोड़ा' अतः माओवादियों को यह सख्त कदम उठाना पड़ा.

पुलिस ने हत्या के तुरंत बाद लगभग एक दर्जन ग्रामीणों को गिरफ्तार किया जिनमें एक कम से कम एक का कथित रूप से माओवादियों के साथ संबंध था.

सरकार की ओर से उत्पीड़न

भारत सरकार ने खुल कर बोलने के विरुद्ध राजद्रोह कानूनों का इस्तेमाल किया है, निषेधात्मक आदेश दे कर शांतिपूर्ण विरोध प्रदर्शनों पर रोक लगाई है और जिन क्षेत्रों में माओवादी बड़ी संख्या में मौजूद हैं वहाँ अपनी नीतियों और व्यवहार के आलोचकों के विरुद्ध मनगढंत आपराधिक मामले दर्ज कराए हैं. सरकारी समर्थन प्राप्त निगरानी कर्ताओं ने कार्यकर्ताओं पर आक्रमण किए हैं, यह दावा करते हुए कि जो लोग सरकार पर अधिकारों के हनन का आरोप लगा रहे हैं वे माओवादी समर्थक हैं.

मनमाने ढंग से गिरफ़्तारियाँ और प्रताड़ना

मानवाधिकार कार्यकर्ता एवं सक्रियतावादी, विशेषकर वे जो सरकारी बलों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं, हिरासत में ले लिए जाने और 'माओवादी' समर्थक का ठप्पा लगाए जाने अथवा इससे भी कुछ बुरा हो जाने के भय से आक्रांत हैं. स्थानीय कार्यकर्ता मानते हैं कि उन्हें

छत्तीसगढ़, उड़ीसा, झारखंड और आंध्र प्रदेश के दूरदराज इलाकों में काम करते हुए माओवादियों के संपर्क में आना पड़ता है और यह अपरिहार्य है. राज्य सुरक्षा बल, माओवादियों का पता लगाने की अपनी असमर्थता से हताश हैं क्योंकि वे आसपास के राज्यों के जंगलों में घुस जाते हैं और वे अपनी हताशा उन 'कमजोर' लक्ष्यों-माओवादियों के समर्थक इलाकों के ग्रामीणों अथवा पुलिस की प्रताड़ना और राज्य की नीतियों के आलोचकों के विरुद्ध आक्रमण करने में निकालते हैं.

स्थानीय कार्यकर्ता अपने मानवतावादी कार्यों को पूरा करने के लिए माओवादियों की कुछ मांगों की पूर्ति करना आवश्यक समझते हैं. इनमें उन क्षेत्रों के बारे में सहमति शामिल हो सकती है

जहाँ वे काम कर सकते हैं या अपनी सेवाएँ दे सकते हैं, अथवा अपनी गतिविधियाँ संचालित करना जारी रख सकते हैं. सरकारी अधिकारी प्रायः इस बात को जानते हैं.

उड़ीसा के एक पुलिस अधिकारी ने ह्यूमन राइट्स वाच को बताया, यह इन कार्यकर्ताओं का दायित्व है कि वे हमें माओवादी गतिविधियों के बारे में बताएँ. यदि वे किसी प्रतिबंधित गुट के बारे में कोई सच्चाई छिपाते हैं तो स्वाभाविक है कि वे भी संदिग्ध बन जाते हैं. वह अधिकारी हालाँकि इस बात को समझते थे कि माओवादियों के विषय में सूचना देने वाले लोग खतरे का सामना करते हैं, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहाँ पुलिस अपने ही कर्मचारियों को भी माओवादियों के घात लगा कर और निशाना बना कर की गई हत्याओं से बड़ी कठिनाई से बचा पाती है.

राँची और दिल्ली में बिलकुल जमीनी स्तर पर काम करने वाले मानवाधिकार कार्यकर्ताओं की बैठकों में कई कार्यकर्ताओं ने ह्मूमन राइट्स वाच को बताया कि उनके विरुद्ध आपराधिक मामले लंबित हैं. उनमें से कई ने इस बात पर जोर दिया कि अधिकारियों ने ये मामले उन्हें परेशान करने या डराने धमकाने के लिए दायर किए हैं और आरोप इन अनुमानों पर आधारित हैं कि वे सरकार के आलोचक अथवा गुप्त रूप से माओवादियों के समर्थक हैं.

कई कार्यकर्ताओं ने माना कि स्थिति जटिल है क्योंकि इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि कुछ कार्यकर्ता माओवादियों के मुखौटे अथवा उनके सिद्धांतों के समर्थक हैं, किंतु

अधिकारी कई बार इन अनुमानों पर भी सक्रिय हो जाते हैं कि कार्यकर्ता माओवादियों की आपराधिक गतिविधियों में भी उनका साथ दे रहे हैं, जबकि इस बात के कोई सुबूत नहीं होते हैं.

कार्यकर्ताओं के विरुद्ध लगाए गए आरोप ठोस सुबूत पर आधारित नहीं होते हैं इसकी एक सच्चाई यह भी है कि इसी कारण कई मामलों में कार्यकर्ता बरी कर दिए जाते हैं. एक कार्यकर्ता ने कहा, "हम सदैव जेल भेज दिए जाने की आशंका से जूझते रहते हैं. सरकार हम पर किसी भी बात का आरोप लगा सकती है और उनके बाद हमें प्रयास करके अपनी निर्दोषता सिद्ध करनी होती है. इसमें वर्षों लग सकते हैं".

वकीलों ने ह्यूमन राइट्स वाच के समक्ष इस बात की पुष्टि की कि कुछ कार्यकर्ताओं ने बरी होने से पूर्व कई वर्ष जेल में बिताए हैं.

निचली अदालतें कथित रूप से माओवादी होने का आरोप लगे व्यक्तियों को जमानत देने में हिचकिचाती हैं. कई बार अभियुक्तों को अपनी अपील की प्रक्रिया को सर्वोच्च न्यायालय तक ले जाना पड़ता है तब जा कर उनकी जमानत होती है.

कोपा कुंजम का उत्पीड़न, छत्तीसगढ़

कोपा कुंजम, वनवासी चेतना आश्रम (VCA) से जुड़े एक आदिवासी युवा नेता अपनी विकास गतिविधियों, जिनमें स्वास्थ्य एवं स्वच्छता कार्यक्रमों में उनकी भागीदारी भी थी, इनके लिए छत्तीसगढ़ में प्रख्यात थे. जब क्षेत्र में सह सैनिक सलवा जुडुम आंदोलन की शुरुआत हुई तो कुंजम उन ग्रामीणों के पुनर्वास के कार्य में जुट गए जिन्हें अपने घर छोड़ने को बाध्य होना पड़ा था. एक स्थानीय कार्यकर्ता के तौर पर, जो दूरदराज इलाकों में जाने में समर्थ थे, वह सलवा जुडुम के सदस्यों, सल्वा जुडुम में भर्ती विशेष पुलिस अधिकारियों तथा अन्य सुरक्षा कर्मचारियों द्वारा की जा रही मानवाधिकार की अनेक घटनाओं को लिपिबद्ध करने में सक्षम रहे. जब उत्पीड़न की घटनाएँ पहली बार प्रकाश में आईं तो पत्रकार तथा अन्य कार्यकर्ता कई बार ग्रामीणों से मिलने और उनके आरोपों का लेखाजोखा तैयार करने के लिए बस्तर के दुर्लभ इलाकों तक पहुँचने के लिए कुंजम पर निर्भर रहते. इसने स्थानीय अधिकारियों में आक्रोश को जन्म दिया जिन्होंने प्रायः यह

कहा कि कुंजम और उनके सहकर्मी केवल उन्हीं घटनाओं का वर्णन कर रहे हैं जो माओवादियों के पक्ष में हैं.

20 अप्रैल, 2009 को कुंजम वीसीए की ओर से आपूर्ति लेकर एक ऐसे गाँव में जा रहे थे जहाँ सल्वा जुडुम ने इससे पहले स्थानीय आबादी को विस्थापित कर दिया था. पुलिस ने एक चौकी पर उन्हें रोका और सहायता सामग्री जब्त कर ली. मई, 2009 में पुलिस ने वीसीए के कार्यालय और शरण स्थल ढहा दिए.

2 जून, 2009 को कुंजम ग्राम नेताओं पुनेम हंगाराम और झादी नागेश्वर के साथ लिंगागिरि जा रहे थे जब वन में माओवादियों से उनका सामना हुआ. माओवादियों ने हंगाराम तथा नागेश्वर का अपहरण कर लिया किंतु कुंजम को जाने दिया. वह दंतेवाड़ा वापस गए और उन्होंने अधिकारियों को अपहरण के बारे में बताया और पुलिस में शिकायत भी दर्ज कराई. सल्वा जुडुम के सदस्यों ने फिर कुंजम का अपहरण में हाथ होने का आरोप लगाया. हंगाराम की बाद में हत्या कर दी गई किंतु नागेश्वर को 13 जून, 2009 को रिहा कर दिया गया. नागेश्वर ने बाद में इस बात की पुष्टि की कि अपहरण में कुंजम का कोई हाथ नहीं था और उन्होंने माओवादियों से दोनों बंधकों को रिहा करने की प्रार्थना की थी.

3 अगस्त को सुरक्षा बलों ने कुंजम के घर पर छापा मारा. उन्होंने उनसे सवाल पूछे और राइफ़ल की मूठ से उन्हें मारा. अगले दिन कुंजम ने पुलिस अधीक्षक को लिखाः

> जब मैंने पूछा कि मैंने क्या अपराध किया है और क्या उनके (सुरक्षा बलों के) पास तलाशी का वारंट है तो उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया, बल्कि इसके बजाय कहा, “हमें सब कुछ करने की स्वतंत्रता है. तुम्हें बुरी तरह पीटने की भी”. उन्होंने पूरे घर की तलाशी ली किंतु वहाँ कुछ भी आपत्तिजनक नहीं मिला इसके .न ही उन्होंने कुछ जब्त किया ,बाद विशेष पुलिस अधिकारियों के दल और पुलिस कर्मचारियों ने मुझे उनके साथ जाने को बाध्य किया और मुझसे कहा कि मैं उन्हें नदी पार करने का रास्ता दिखाऊँ. उन्होंने मुझे नदी के बीच खड़ा कर के सब ओर से घेर लिया और धमकी दी, “वनवासी चेतना आश्रम के लिए काम करना छोड़

> दो. तुम लोग उच्चाधिकारियों को सब कुछ बता देते हो. हम तुम्हें चेतावनी दे रहे हैं कि इससे बाज आओ. अगली बार हम तुम्हें जान से मार देंगे".

जब तक उन्होंने यह पत्र लिखा तब तक सल्वा जुडुम, जिसने आदिवासी समुदायों के एक दूसरे के विरुद्ध खड़ा किया और दसियों हज़ार लोगों को विस्थापित किया जिनमें से अधिकतर आदिवासी थे, उसकी व्यापक आलोचना होने लगी थी. इस न्यायोचित आलोचना का अधिकांश श्रेय कुंजम और उनके वीसीए के सहकर्मियों को जाता है. शिक्षाविद् नंदिनी सुंदर तथा रामचंद्र गुहा ने सर्वोच्च न्यायालय में एक सफल रही जनहित याचिका दायर की जिसमें निगरानी गुटों के उपयोग को चुनौती दी गई थी. इसका आंशिक रूप से श्रेय कुंजम और वीसीए द्वारा किए गए कार्यों को जाता है.

10 दिसंबर, 2009 को कुंजम और अलबन टोपो, मानवाधिकार कानून तंत्र (HRLN) से जुड़े एक वकील को हिरासत में ले लिया गया. वे दोनों भोजन का अधिकार अभियान के लिए काम कर रहे थे. टोपो को रिहा करने से पूर्व 18 घंटे तक पुलिस हिरासत में रखा गया और पीटा गया. पुलिस ने कुंजम की भी जम कर पिटाई की. उन्हें उनके पैरों के जरिए छत से लटका दिया गया और बेल्ट और लाठियों से तब तक मारा गया जब तक वह मूर्छित नहीं हो गए.

> पुलिस आई और कहा कि उप महानिरीक्षक कल्लूरी हमसे कुछ बातचीत करना चाहते हैं. किंतु वे हमें बीजापुर पुलिस थाने ले गए जहाँ उन्होंने हमें पीटना शुरू कर दिया...उन्होंने मुझे उलटा लटकाया. मुझे पीटने वाले व्यक्तियों में से एक का नाम नंद कुमार था. उन्होंने मुझे पेटियों, लाठियों और बंदूकों से मारा जब तक कि मैं बेहोश नहीं हो गया. जब मुझे होश आया तो मैंने देखा कि उन्होंने मुझे बाहर बरामदे में छोड़ दिया था. वे कहते रहे, "तुम राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को रिपोर्ट करते हो. तुम दिल्ली में वरिष्ठ अधिकारियों को रिपोर्ट करते हो. तुम टीवी समाचार चैनेलों को सूचना देते हो. तुम तब शिकायत नहीं करते जब नक्सल लोगों को मारते हैं. तुम नक्सलों के साथ सहानुभूति रखने वालों में हो".

अपनी गिरफ़्तारी के दो दिन बाद कुंजम को छत्तीसगढ़ के एक न्यायालय में पेश किया गया और उन पर पुनेम हंगाराम की हत्या का आरोप लगा दिया गया.

लगभग दो वर्ष बाद, 30 सितंबर, 2011 को कुंजम को भारतीय सर्वोच्च न्यायालय के आदेश पर जमानत दी गई. उनके वकील, मानवाधिकार कानून तंत्र के कॉलिन गोंसाल्वेस ने ह्यूमन राइट्स वाच को बताया:

> सर्वोच्च न्यायालय ने कुंजम के विरुद्ध कोई मामला नहीं पायाअभियोग .
> वे कह रहे हैं कि .पक्ष के दोनों गवाह सरकारी वर्णन का खंडन कर रहे हैं
> उनके विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं .कुंजम का अपहरण में कोई हाथ नहीं था
> .है

कुंजम अब जमानत पर बाहर हैं और मुकदमे की प्रतीक्षा कर रहे हैं.

लिंगाराम कोडोपी, सोनी सूरी की मनमाने ढंग से हिरासत और दुर्व्यवहार, छत्तीसगढ़

छत्तीसगढ़ पुलिस ने एक आदिवासी अधिकार कार्यकर्ता लिंगाराम कोडोपी को 31 अगस्त से 26 अक्तूबर, 2009 तक मनमाने ढंग से हिरासत में रखा. उन्हें तभी रिहा किया गया जब उनके परिवार ने छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय में एक बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की.

कोडोपी का कहना है कि उनकी हिरासत की संपूर्ण अवधि में पुलिस अधीक्षक अमरेश मिश्रा ने उनसे बार बार कहा कि वह विशेष पुलिस अधिकारी बन जाएँ. 22 अक्तूबर, 2009 को दिए गए एक हलफनामे में कोडोपी ने अपनी हिरासत, और उनके और उनके परिवार के सदस्यों की निरंतर प्रताड़ना और उन्हें मिली धमकियों के बारे में बताया:

आदिवासियों के अधिकारों के कार्यकर्ता लिंगाराम कोडोपी जब वह सरकारी सुरक्षा बलों और माओवादियों की धमकियों के बाद दिल्ली पलायन कर गए थे. @2010 शैलेंद्र पांडे/ तहलका

> अपनी पूरी हिरासत के दौरान मुझे विशेष पुलिस अधिकारी बनने के लिए या तो धमकियाँ दी जाती थीं अथवा धन का प्रस्ताव दिया जाता था. मुझ से कहा गया कि यदि मैं एसपीओ बनने के लिए तैयार नहीं हुआ तो मुझे नक्सलियों की वर्दी पहना कर गोली मार दी जाएगी और सब समझेंगे कि यह एक नक्सली था जो मारा गया. मुझे पैसा देने और स्थाई नौकरी देने को भी कहा गया बशर्ते कि मैं एसपीओ बनने के लिए राजी हो जाऊँ और अपने गाँव में नक्सलवादियों की पहचान करा दूँ.

माओवादियों ने भी कोडोपी से कहा था कि वह उनके साथ शामिल हो जाएँ और जब उन्होंने मना किया तो वे नाराज हो गए. उन्हें चेतावनी दी गई कि वे ग्रामीणों को नक्सल उत्पीड़न का विरोध करने के लिए विरुद्ध सक्रिय न करें और सशस्त्र गुटों की आलोचना करने पर उन्हें धमकाया गया. जून, 2011 में माओवादियों ने कोडोपी के दादा

मदरू राम की टांग में गोली मार दी और उनके पारिवारिक गृह को लूट लिया. उन्होंने परिवार पर पुलिस के मुखबिर होने का आरोप लगाया.

रिहाई के बाद, अपने प्राण जाने के भय से आक्रांत कोडोपी ने नई दिल्ली की यात्रा की और पत्रकारिता में एक पाठ्यक्रम में दाखिला ले लिया. 22 अक्तूबर, 2009 को उन्होंने एक हलफनामा दायर किया जिसमें उन्होंने छत्तीसगढ़ पुलिस द्वारा दी गई धमकियों का विवरण दिया और जिला अधीक्षक अमरेश मिश्रा को नामजद किया. एक महीने बाद, पुलिस ने कोडोपी के मकान पर छापा मारा और उनके पिता को धमकी दी.

जुलाई, 2010 में छत्तीसगढ़ पुलिस ने कोडोपी पर एक कांग्रेसी राजनीतिज्ञ पर माओवादी हमले में शामिल होने का आरोप लगाया. उनका आरोप था कि कोडोपी एक वरिष्ट माओवादी कमांडर हैं जिन्हें हथियारों का प्रशिक्षण मिला हुआ है, जो नियमति रूप से विदेश यात्रा करते हैं और माओवादी प्रवक्ता आज़ाद के, जो पुलिस के हाथों मारे गए थे, संभावित उत्तराधिकारी हो सकते हैं. कोडोपी ने पत्रकारों को बताया कि उनके पास कभी पासपोर्ट तक नहीं रहा है और जब कांग्रेसी नेता पर हमला हुआ तब वह क्षेत्र में भी नहीं थे. उन्होंने नई दिल्ली में एक पत्रकार से कहाः “मेरे राज्य की पुलिस और नक्सलियों के बीच कोई विभिन्नता नहीं है”.

छत्तीसगढ़ में लौटने के कुछ ही दिनों बाद लिंगा कोडोपी और एक स्थानीय ठेकेदार बी के लाला को गिरफ्तार कर लिया गया. राज्य पुलिस आरोप लगाती है कि लिंगा एस्सार औद्योगिक समूह की तरफ से माओवादियों तक ले जाने के लिए पैसा प्राप्त कर रहे थे. लिंगा कोडोपी इस मामले में अपने शामिल होने से इन्कार करते हैं. जेल से भेजे गए अपने एक पत्र में वह कहते हैं:

"जब मैंने 2009 में विशेष पुलिस अधिकारी बनने से मना किया, तभी से सरकार मेरी जान के पीछे पड़ी है. पत्रकारिता का प्रशिक्षण पूरा करने के बाद मैंने सोचा था कि मैं अपनी संस्कृति और आदिवासी समाज की सेवा करूंगा. इसके बाद पुलिस ने मीडिया में मुझे बदनाम किया, और कहा कि मैं "आजाद" की जगह लेने जा रहा हूं. पत्रकारों की बहुत आलोचना होती है. यह सोचकर मैं अपने गांव वापस आ गया, ताकि एक सामान्य जीवन गुजार सकूं. बस इसके बाद मुझे एक माओवादी समर्थक, एक अन्तर्राष्ट्रीय

आतंकवादी और एक देशद्रोही घोषित कर दिया गया.....मैं हथियार उठाना नहीं चाहता, लेकिन मुझपर ऐसा करने के लिए दबाव क्यों डाला जा रहा है? हरेक को युद्ध टालने की कोशिश करनी चाहिए.....छत्तीसगढ़ सरकार मुझसे और आदिवासियों से घृणा करती है. छत्तीसगढ़ सरकार मुझे नक्सली घोषित करके, मेरी हत्या करने पर तुली हुई है."

लिंगा कोडोपी की बुआ सोनी सोरी कहती है कि लिंगा कोडोपी बाजार में घटना स्थल के आसपास भी मौजूद नहीं थे. सोरी को भी बाद में गिरफ्तार किया गया, उन्होंने तहलका पत्रिका को बताया, “सादी वर्दी पहने हुए सात लोगों ने लिंगा को पालनार में मेरे घर से गिरफ्तार किया. हमारा एस्सार से कोई लेना देना नहीं है.....पुलिस ने हमसे कहा था कि मैं और लिंगा माओवादी बनकर एस्सार के प्रतिनिधियों के पास जाएँ और लाला से पन्द्रह लाख रुपया ले लें लेकिन हमने ऐसा करने से मना कर दिया.”

एक स्कूल अध्यापिका सोनी सूरी का आरोप है कि छत्तीसगढ़ पुलिस ने उनको यातनाएँ दीं और वह अब भी पुलिस हिरासत में हैं और मुकदमे की प्रतीक्षा कर रही हैं. @2011 गरिमा जैन/ तहलका

सोनी सोरी ने सर्वोच्च न्यायलय में एक याचिका दायर की है जिसमें उन्होंने कहा है कि, पुलिस ने उन पर दबाव डाला था, कि वह अन्य लोगों को भी नक्सलवादी समर्थक के रूप में फंसाने में मदद करें.

पुलिस ने सोनी सोरी को 4 अक्टूबर 2011को दिल्ली में गिरफ्तार किया और उन्हें दिल्ली की ही एक अदालत में पेश किया गया. उन्होंने अदालत में प्रार्थना की कि उन्हें छत्तीसगढ़ न भेजा जाए, क्योंकि उन्हें डर है कि छत्तीसगढ़ में उन्हें प्रताड़ित किया जा सकता है तथा अन्य तरह के दुर्व्यवहार किए जाएंगे. परन्तु उनकी बात नहीं सुनी गई. बलिक दिल्ली की अदालत ने उनके मुकदमे को छत्तीसगढ़ की अदालत में स्थानान्तरित कर दिया और सोनी सोरी को छत्तीसगढ़ पुलिस की हिरासत में सौंप दिया. सोनी सोरी को दन्तेवाड़ा की अदालत में प्रस्तुत किया गया, जिसने पुलिस को आदेश दिया कि वह सोनी सोरी की सुरक्षा सुनिश्चित करे और प्रताड़ना से उनकी रक्षा करे. लेकिन 10 अक्टूबर को जब सोनी सोरी को अदालत के सामने पेश किया जाना था. पुलिस ने अदालत को बताया कि वह बाथरूम में फिसलकर गिर गई हैं और उनकी कमर में चोट लगी है. सोनी सोरी ने अपने वकील को लिखे एक पत्र में बताया कि उन्हें प्रताड़ित किया गया थाः

"मुझे बार-बार बिजली के झटके देने के बाद मेरे कपड़े उतार दिए गए. मुझे नंगा खड़ा कर दिया गया. अंकित गर्ग (पुलिस अधीक्षक) कुर्सी पर बैठकर मुझे देख रहा था. मेरे शरीर की तरफ देखते हुए, मुझे गन्दी-गन्दी गालियां दे रहा था और मुझे लज्जित कर रहा था. कुछ समय के बाद वो बाहर चला गया और उन्होंने तीन लड़कों को अन्दर भेजा. उन्होंने मुझे बेइज्जत करना शुरू किया. फिर उन्होंने क्रूरता पूर्वक मेरे शरीर में चीजें डाल दी मैं दर्द सहन नहीं कर पाई और करीब-करीब बेहोश हो गई. बहुत देर के बाद मुझे होश आया.....तब तक सुबह हो चुकी थी.

छत्तीसगढ़ राज्य में सोनी सोरी का उचित डाक्टरी इलाज नहीं कराया गया, बाद में उन्हें कोलकता लाया गया जहां डाक्टरों ने अपनी रिपोर्ट में बताया कि उन्होंने दो बाह्य पदार्थ उनकी योनि और गुदा द्वार से निकाले. सरकार ने उनको प्रताड़ित करने के लिए जिम्मेदार लोगों के खिलाफ अभी तक कोई कार्रवाई नहीं की है जबकि सोनी सोरी अभी भी जेल में हैं और अपने मुकदमे के फैसले का इन्तजार कर रही हैं.

लिंगा कोडोपी के समर्थक दावा करते हैं कि लिंगा कोडोपी के खिलाफ यह कार्रवाई बदले की भावना से की गई है क्योंकि उन्होंने अभी हाल ही में छत्तीसगढ़ में सुरक्षा बलों द्वारा हमला किए गए तीन गांव के बारे में जांच करने के बाद सूचनाएं प्रकाशित कर दी थी.

6 मार्च, 2012 को औपचारिक आरोप पत्र दायर किया गया. आरोप पत्र में एस्सार कम्पनी के अधिकारियों का भी नाम था. इस रिपोर्ट को लिखते समय तक लिंगा काडोपी और सोनी सोरी जेल में हैं, जबकि एस्सार के अधिकारी डी वी सी एस वर्मा तथा ठेकेदार, लाला को जमानत पर रिहा कर दिया गया है. सभी के ऊपर राज्य के विरूद्ध युद्ध का प्रयत्न करने अथवा उसमें मदद करने तथा आपराधिक षडयन्त्र रचने का तथा धारा 124- भारतीय दण्ड संहिता, 'राजद्रोह' का आरोप भी लगाया गया. लिंगाकोडोपी के वकील के के दूबे कहते हैं कि सभी ने लगाए गए आरोपों से इन्कार किया है:

लिंगाराम और लाला दोनों ने बताया है कि उन्हें उनके घरों से पकड़ा गया जबकि पुलिस कहती है कि उन दोनों को बाजार में पैसे का लेन देन करते रंगे हाथों पकड़ा गया. पुलिस का कहना है कि उनके पास स्वतन्त्र चश्मदीद गवाह भी हैं. देखते हैं कि वे क्या सबूत पेश करते हैं और गवाह कोर्ट में क्या बताते हैं और वे लोग अदालत में यह कैसे सिद्ध करते है कि यह माओवादियों का षडयन्त्र था. हांलांकि अन्त में अगर इन लोगों को बरी भी कर दिया जाता है तो भी वे मानसिक और शारीरिक तकलीफ भुगत चुके होंगे. क्योंकि जेल में रहना ही एक कष्टदायक अनुभव है. हालांकि जुलाई 2012 में लाला के वकील ने कहा कि वह पुलिस का गवाह बनने के लिए तैयार है तथा वह एस्सार के खिलाफ सबूत देगा.

डॉक्टर एस के हनीफ की मनमाने ढंग से गिरफ्तारी, आंध्र प्रदेश

पेशे से एक चिकित्सक डा. एस के हनीफ छत्तीसगढ़ से उजड़कर आन्ध्रप्रदेश में सलवा जुडुम की ज्यादतियों के कारण विस्थापित हुए आदिवासियों की सेवा कर रहे थे. उन्होंने बताया कि इन आदिवासियों में से बहुत से लोगों के घाव थे तथा अन्य कई मलेरिया व टीबी से पीड़ित थे. अपनी संस्था सितारा के माध्यम से उन्होंने इन विस्थापित बच्चों को शिक्षित करने का कार्य भी शुरू किया. डा. हनीफ ने ह्यूम राइट्स वाच को बताया:

छत्तीसगढ़ में सलवा जुडुम शुरू होने के बाद दसियों हजार आदिवासी जान बचाने के लिए आन्ध्रप्रदेश के जंगलों में छिप गए. एक डाक्टर के नाते मैंने महसूस किया कि मुझे लोगों की मदद करनी चाहिए. सरकार कुछ नहीं कर रही थी. पुलिस इनमें से ज्यादातर को माओवादी समर्थक मान रही थी और उन्होंने इन लोगों के खिलाफ माओवादियों को भोजन, दवाई और रुकने के लिए जगह देने का आरोप लगा दिया था. इस क्षेत्र में काम करने वाले ज्यादातर सामाजिक संगठनों ने जब इस मुद्दे पर काम करना शुरू किया तो उन्हे महसूस हुआ कि उन पर लगातार नजर रखी जा रही है.वर्ष 2009 में पुलिस ने हनीफ के विरुद्ध माओवादियों को चिकित्सीय सहायता देने का मामला दायर किया. हनीफ ने बताया:

मेरे साथ काम करने वालों में से एक व्यक्ति का नाम मड़कम मालिया था. उन्हें पकड़ कर पुलिस द्वारा यातनाएं दी गई और उस पर दबाव डाला गया कि वो यह बयान दे कि मैं नक्सलवादियों को दवाई देता हूँ. आप क्या कर सकते हैं जब पुलिस आपको मार रही हो? उसको इतना मारा गया कि पुलिस ने जो चाहा उन्होंने कह दिया. दुख की बात यह है कि असल में वह व्यक्ति नक्सलवादियों द्वारा सताया गया था. उनके पास जमीन थी. नक्सलवादियों ने उसकी जमीन ले ली और उनके बेटे की हत्या कर दी. नक्सलवादियों का कहना था कि उसका बेटा पुलिस के साथ काम करता है. वो नक्सलवादियों से बचने के लिए आन्ध्रप्रदेश आ गया था. फिर भी पुलिस उन्हें नक्सलवादी कहती है.

हनीफ को जिला अदालत से जमानत मिल गई लेकिन उन्हें विस्थापित लोगों के साथ अपना काम बन्द करना पड़ा. जब उन्होंने मेरे खिलाफ मुकदमा दायर किया, तो मैंने फैसला किया कि मैं इस इलाके में काम नहीं करूंगा. मैं किसी से पैसा नहीं लेता था. मैं एक डाक्टर हूँ और मैं किसी भी सुरक्षित जगह रहते हुए पैसे कमा सकता हूँ परन्तु मैं लोगों की मदद करना चाहता था. लेकिन मेरे काम के इनाम में मुझे यह पुलिस केस मिला. पुलिस मुझसे बहुत नाराज थी और कहती थी, “मानवाधिकार आयोग वाले, संस्थाओं वाले जो भी आते हैं वे सब मुझसे मिलने आते हैं”. वे मेरी साख को नष्ट करना चाहते थे.

अन्तर्राष्ट्रीय कानून चिकित्सा करने वालों को विशेष संरक्षण प्रदान करती है. चिकित्साकर्मी हरेक की चिकित्सा कर सकते हैं. वो हथियारबन्द विरोधियों जैसे कि माओवादियों की भी चिकित्सा कर सकते हैं. मानवाधिकार कानून जो सशस्त्र संघर्ष के क्षेत्र में लागू होता है उनके अनुसार सरकार चिकित्सक के कर्तव्यों का पालन करने के कारण किसी को सजा नहीं दे सकती. अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानून जिसे अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार प्रावधान कहा जाता है उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को सर्वश्रेष्ठ उपलब्ध चिकित्सा प्राप्त करने का अधिकार है तथा ऐसी परिस्थितियों का निर्माण किया जाना चाहिए जिसमें किसी को भी बीमार होने की अवस्था में, सभी चिकित्सीय सुविधाएं प्राप्त हो सकें. एक अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञ दल जो इन कानूनों का पालन सुनिश्चित करता है, उसका कहना है कि सरकार किसी भी ऐसे व्यक्ति का इलाज करने से डाक्टरों को नहीं रोक सकती जो सरकार का विरोधी हो, सिवाय उन परिस्थितियों के जबकि वहां ऐसा करने से रोकने के लिए कानून बना दिया गया हो अथवा ऐसा करना परिस्थितियों के अनुसार अत्यन्त आवश्यक हो.

रबीन्द्र कुमार माझी, मधुसूदन बद्रा और कंडेराम हेब्राम की प्रताड़ना, उड़ीसा

जुलाई 2008 में रबीन्द्र कुमार माझी को एक माओवादी हमले के मामले में शामिल होने के संदेह में गिरफ्तार कर लिया गया. उन्हें बुरी तरह तब तक पीटा गया जब तक उन्होंने कुछ लोगों के नाम नहीं बताए. उन्होंने अन्त में अपनी स्वयं सेवी संस्था क्योंझर एकीकृत ग्रामीण विकास एवं प्रशिक्षण संस्था (KIRDTI). में काम करने वाले साथियों के नाम बता दिए. उनके साथी मधुसूदन बद्रा ने बताया कि उन्हें सताकर दिए गए बयान के आधार पर पकड़ा गया और जब उन्होंने पुलिस स्टेशन में माझी को देखा तो वह चलने फिरने के लायक नहीं थे. बद्रा ने ह्यूमन राइट्स वाच को बताया:

"रबी को पुलिस ने बहुत बुरी तरह प्रताड़ित किया था. उन्होंने उसके पांव बांधकर छत से उल्टा लटका दिया था. इसके बाद उन्होंने उसे इतनी बुरी तरह मारा कि उसकी जांघ की हड्डी टूट गई. असल में रबी को इतनी बुरी तरह पीटा गया कि उसने हमारे नाम बोल दिए इसलिए फिर हमें भी पकड़ लिया गया."बहुत बुरी तरह पिटाई के बाद तीनों ने यह स्वीकार कर लिया कि वो माओवादी हैं और उन्होंने चालीस अन्य स्थानीय आदिवासी बोली बोलने वाले आदिवासियों के साथ मिलकर एक तथाकथित पुलिस मुखबिर खगेश्वर

महन्त और उसके रिश्तेदार तुलसीराम महन्त के घर हमला किया था. हमलावरों ने तथाकथित रूप से परिवार के सदस्यों को बांध दिया और फिर बाहर खींच लिया. इस दल ने पूरे मकान को तहस-नहस कर दिया. उन्होंने जेवर और नकदी लूट ली. सम्पति नष्ट कर दी और बन्दी बनाए गए लोगों की पिटाई की.

बद्रा ने बताया कि 12 जुलाई को पुलिस उनके पास दोपहर में आई. उन्हें हरिचन्दनपुर पुलिस चौकी ले जाया गया और तब तक पीटा गया तब तक उन्होंने अपना अपराध स्वीकार नहीं कर लिया. उन्होंने मुझे पीटना शुरू किया तब शाम के चार बजे थे. वो पूछते जा रहे थे क्या तू एक माओवादी है मैंने कहा, "नहीं". उन्होंने कहा अगर तू मना करेगा तो हम तुझे और मारेंगे. अन्त में मैंने कह दिया, "हां".

पुलिस ने हेब्रम को 13 जुलाई को उसको घर से सुबह 5:30 पर उठाया. उन्होंने भी बताया कि उन्हें हिरासत में यातनाएं दी गईं:

पुलिस ने कहा, "तुम एक माओवादी हो". बाद में वो मुझे क्योंझर पुलिस स्टेशन में ले गए उन्होंने मुझसे खाने के बारे में पूछा लेकिन, मैंने मना कर दिया. मैं सिर्फ यही पूछ रहा था "मुझे आप यहां क्यों लाए हैं?" उन्होंने फिर कहा कि मैं एक माओवादी हूँ और मैंने एक घर जलाया है. एस पी साहब ने मुझे पीटना शुरू किया. वो खुद एक लाठी लेकर मुझे पीट रहे थे. इसी बीच KIRDTI ने अपने एक प्रतिनिधि को एक पत्र लेकर भेजा जिसमें यह बताया गया था कि हम माओवादी नहीं है, बलिक संस्था के कार्यकर्ता हैं और संस्था में वर्ष 1996 से काम कर रहे हैं. उन्होंने मुझे वो पत्र दिखाया फिर एस पी साहब ने कहा "इसे और मत मारो". 14 जुलाई को मुझे मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया. वहां मैं रबी से मिला, उसने मुझे बताया कि उसे बहुत बुरी तरह मारा गया है. उसने कहा मैंने वही बोला जो मैं कह सकता था. वो इतना डरा हुआ था उसने मजिस्ट्रेट और मीडिया के सामने वही बोला जो पुलिस द्वारा उससे पूछा गया.

इन स्वीकारोक्तियों के आधार पर इन तीनों लोगों को ढाई साल जेल में रहना पड़ा. भारत सरकार ने इस मामले में मानवाधिकार संगठनों की रिपोर्ट को अमान्य कर दिया तथा पुलिस की कहानी को सच मान लिया. जुलाई वर्ष 2008 में आदिवासियों के मानवाधिकार व मूल अधिकारों के बारे में संयुक्त राष्ट्र के सूचनादाता जेम्स अनाया ने

इस विषय में अपनी चिन्ता जाहिर करते हुए कहा कि KIRDTI संस्था के सदस्यों से पूछताछ करने की योजना का संबंध इस संस्था द्वारा आदिवासियों के अधिकारों के लिए उनके द्वारा किए जा रहे कानूनी और शांतिप्रिय गतिविधियों से हो सकता है. तथा इसका असर माझी की मानसिक और शारीरिक सिथति पर हिरासत के दौरान असर डालने के लिए किया जाना भी संभव है. उन्होंने KIRDTI के अन्य सदस्यों दुस्कर बारिक, ममता बारिक, जयन्ती सेठी और रंजन पटनायक, जिन्हें कि इस डर से छिपकर रहना पड़ रहा है कि पुलिस उन्हें भी गिरफ्तार कर, उनके साथियों की तरह प्रताड़ित न करे, उनके विषय में भी अपनी चिन्ता व्यक्त की.

भारत सरकार ने विशेष सूचनादाता को फरवरी 2009 में जवाब दिया कि KIRDTI संस्था के कार्यकताओं को परेशान करने और प्रताड़ित करने के आरोप निराधार हैं:

"उपरोक्त गिरफ्तार व्यक्तियों ने इस घटना में अपने शामिल होने की बात स्वीकार कर ली है तथा उन्होंने यह भी बताया है कि श्री महन्त के घर पर 30 जून 2008 को हुए हमले के समय KIRDTI संस्था के सचिव श्री दुस्कर बारिक भी मौजूद थे और उनके पास गैर कानूनी बन्दूकें भी हैं. आगे जांच करने पर यह भी पता चला है कि श्री रबिन्द्र कुमार माझी मधुसूदन बद्रा, श्री केन्डेराम हेमब्राम और श्री पुस्कर बारिक जो KIRDTI में काम करते हैं, वे सभी हिंसक माओवादी गतिविधियों में शामिल हैं. असल में श्री बारिक KIRDTI के सदस्यों को प्रताड़ित करने की खबरें लोगों को गुमराह करने और खुद को गिरफ्तारी से बचाने के लिए फैला रहे हैं."

मार्च 2011 में क्योंझर सत्र न्यायालय ने इन तीनों को सभी मामलों से बरी कर दिया. जबकि इससे पहले निचली अदालतों द्वारा और उच्च न्यायालय द्वारा दो बार इनकी जमानत याचिकाओं को खारिज किया जा चुका था. इसलिए बरी होने तक इन लोगों को जेल में ही रहना पड़ा.

अभी तक यह स्पष्ट नहीं हो पाया है कि संयुक्त राष्ट्र के विशेष सूचनादाता की चिंताओं का उत्तर देते समय भारत सरकार ने पुलिस की बताई हुई कहानी पर क्यों विश्वास किया ? विशेषत: ऐसी परिस्थितियों में जबकि विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया था कि इन कार्यकर्ताओं के बयान यातना देकर प्राप्त किए

गए थे. KIRDTI के प्रमुख बारिक ने ह्यूमन राइट्स वाच को बताया: “वह बहुत मुशिकल दौर था, हमने इतने वर्षों तक आदिवासियों के अधिकारों के रक्षा के लिए काम किया और अब अचानक हमें माओवादी घोषित कर दिया गया”.

प्रतिमा दास की मनमाने तरीके से गिरफ्तारी, उड़ीसा

नारी मुक्त मोर्चा संस्था से जुड़ी उड़ीसा की एक युवा वकील प्रतिमा दास को माओवादियों की मदद करने का आरोप लगाकर उन पर मुकदमा चलाया गया. अन्त में अदालत ने उन्हें सारे आरोपों से बरी कर दिया लेकिन मुकदमे के दौरान ढाई साल तक उन्हें जेल के भीतर रहना पड़ा. पुलिस ने सुश्री दास को 12 अगस्त 2008 को उस समय गिरफ्तार किया जब वे अमरीकी पर्यावरण कार्यकर्ता डेविड पग के साथ कलिंग नगर में एक जनप्रदर्शन में भाग लेकर लौट रही थीं. पग को पूछताछ के बाद छोड़ दिया गया परन्तु सुश्री दास को हिरासत में ले लिया गया. पुलिस सुश्री दास को नहीं पहचानती थी परन्तु पुलिस ने अंदाजा लगाया कि वह शायद कोई माओवादी होंगी. सुश्री दास ने ह्यूमन राइट्स वाच को बताया:

पुलिस ने मुझसे घंटों पूछताछ की उन्होंने मुझसे मेरी शिक्षा व मेरे परिवार के बारे में पूछा. आधी रात को उन्होंने मुझसे कहा कि वो मुझे मेरे घर ले जाएंगे, लेकिन इसकी बजाए वो मुझे पुलिस मुख्यालय ले गए, वहां उन्होंने मुझसे फिर पूछताछ शुरू की. उन्होंने पूछा, “क्या तुम एक माओवादी हो?”. मैंने हर बात से इन्कार किया. वहां कोई महिला पुलिस नहीं थी.....वो एक और माओवादी को लेकर आए, जो आत्मसमर्पण कर चुका था, फिर वो कहने लगे कि मेरी शिनाख्त कर ली गई है. उन्होंने मुझसे कागज पर कुछ लिखने के लिए कहा, और बोले कि तुम्हारी लिखावट एक माओवादी नेता से मिलती है. उन्होंने कहा कि वो मुझे झूठ पकड़ने वाली मशीन पर बैठाएंगे और मेरी नारको जांच की जाएगी. उन्होंने सचमुच मुझे बहुत डराने की कोशिश की. उन्होंने मुझसे विभिन्न माओवादी नेताओं और माओवादी विचारकों के बारे में पूछा. मैंने कहा मैं कुछ नहीं छिपा रही हूं. मैने उनसे कहा कि मेरे परिवार और मेरे वरिष्ठ वकील को मेरी गिरफ्तारी की सूचना दे दी जाए, लेकिन उन्होंने इसे बारे में किसी को भी बताने से इन्कार कर दिया,

लेकिन उन्होंने मेरे घर की तलाशी ली, हालांकि उन्हें वहां से कुछ नहीं मिला, उन्होंने मेरे भाई से एक कोरे कागज पर दस्तखत करवाए. बाद में मुझे पता चला कि पुलिस ने मीडिया को पहले से ही यह बता दिया था कि उन्होंने एक बड़ी माओवादी नेता को गिरफ्तार किया है और यह भी कि मेरे पास से बहुत सारा माओवादी साहित्य बरामद किया गया है. लेकिन पुलिस जानती थी कि मैं निर्दोष हूं.

उन्होंने मुझसे यहां तक कहा कि "हम जानते है कि तुम किसी वारदात में शामिल नहीं हो, लेकिन तुम माओवादियों के मुद्दों पर क्यों काम करती हो?" ढाई साल जेल में गुजारने के बाद 17 नवम्बर 2010 को सुश्री दास को मुकदमे से बरी कर दिया गया. अपने फैसले में जज ने कहा: "किसी भी गवाह ने आरोपी की शिनाख्त नहीं की है.....बल्कि उन्होंने कहा है कि वे आरोपी को नहीं जानते. इन परिस्थितियों में हमारे सामने ऐसा कोई सबूत नहीं है जिससे इन अपराधों में इन आरोपियों के शामिल होने की बात सिद्ध होती हो.....इसलिए आरोपियों को बरी करने का आदेश दिया जाता है".

सामाजिक कार्यकताओं के विरुद्ध राजद्रोह कानून का प्रयोग

सरकार ने सन्दिग्ध माओवादी समर्थको पर अनेकों तरह के आरोप मढ़ दिए हैं इनमें बहुत से सामाजिक कार्यकर्ता भी शामिल हैं. इन आरोपों में राज्य के विरूद्ध युद्ध छेड़ना, अवैध हथियारों को रखना तथा प्रतिबंधित संगठनों का सदस्य होने जैसे आरोप शामिल हैं. भारत का राजद्रोह संबंधित कानून गुलामी के दौर का सबसे विवादित कानून है. भारतीय दंड संहिता की धारा-124 के तहत किसी भी व्यक्ति द्वारा शब्दों से लिखकर या बोलकर या किसी संकेत के द्वारा, या किसी दिखाई देने वाली सामग्री के द्वारा सरकार के बारे में घृणा, अवमानना या अप्रीति उत्पन्न करना शामिल है. हालांकि 1962 में सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय के अनुसार जब तक कोई व्यक्ति अपने किसी कार्य से अथवा भाषण से हिंसा उत्पन्न न करे तब तक उनके विरूद्ध राजद्रोह कानून का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसा कोई भी मुकदमा भारत के संविधान में वर्णित अभिव्यक्ति को स्वतंत्रता को बाधित करने वाला होगा. अदालत ने कहा: सरकार के सार्वजनिक कार्यों और नीतियों की उचित सीमा के भीतर कानूनी दायरे में कड़े शब्दों का प्रयोग करके भी आलोचना की जा सकती है तथा यह संविधान में एक नागरिक को दिए गए अभिव्यक्ति के अधिकार के अनुरूप ही माना जाएगा. सिर्फ ऐसे मामलों में कानून

को बीच में आना चाहिए जबकि, लिखित या मौखिक शब्दों का उद्देश्य किसी को हानि पहुंचाना, समाज की शांति को भंग करना या कानून व्यवस्था की सिथति को बिगाड़ना हो. अदालतों द्वारा राजद्रोह कानून के प्रयोग को सीमित करने के बावजूद राजद्रोह कानून का प्रयोग संदिग्ध माओवादी समर्थक कार्यकर्ताओं के विरूद्ध किया जाता है.

प्रतिमा दास, लिंगाराम कोडोपी और सोनी सोरी के मामले

उपरोक्त तीनों मामलों में अन्य आरोपों के अलावा इन कार्यकर्ताओं पर राजद्रोह का मुकदमा बनाया गया. पुलिस अधिकारियों ने निजी तौर पर बताया कि अधिकतर मामलों में हमारे पास कोई ठोस सबूत नहीं होता है परन्तु हम राजद्रोह का आरोप इसलिए लगा देते हैं ताकि इन लोगों की जमानत न हो पाए. प्रतिमा दास को अदालत द्वारा बरी कर दिया गया है जबकि लिंगाराम और सोनी सोरी अभी भी जेल में हैं.

डा. बिनायक सेन का मामला

डा. बिनायक सेन एक चिकित्सक हैं तथा पीयूसीएल नामक संगठन से जुड़े एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं तथा वे माओवादियों के बारे में सरकार की नीतियों के लम्बे समय से आलोचक रहे हैं. उन्हें 14 मई 2007 को छत्तीसगढ़ जनसुरक्षा अधिनियम के तहत गिरफ्तार कर लिया गया. डा. सेन ने वर्ष 2006 में इस कानून की आलोचना की थी क्योंकि इसके द्वारा किसी को भी 'गैर कानूनी गतिविधियों' जैसे अस्पष्ट शब्द का सहारा लेकर हिरासत में लिया जा सकता है तथा इस तरह से व्यक्तियों और सामाजिक संगठनों की शांतिपूर्ण गतिविधियों पर अंकुश लगाया जा सकता है. अतः यह कानून भारतीय संविधान तथा अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानूनों के विरुद्ध है.

शुरूआत में अधिकारियों ने सेन की गिरफ्तारी उन पर यह आरोप लगाकर की कि वह जेल में बन्द माओवादी नेता नारायण सान्याल और व्यापारी पीयुष गुहा जिस पर पुलिस माओवादी समर्थक होने का आरोप लगाती है के बीच पत्रवाहक का काम कर रहे थे. डा. सेन 70 वर्षीय वृद्ध नारायण सान्याल के डॉक्टर के रूप में उनसे मिलने जाते थे, उनकी मुलाकातें जेल अधिकारियों की निगरानी में होती थीं. जेल अधिकारियों को डा. सेन की तलाशी लेने का अधिकार था. डा. सेन पर मुकदमे के दौरान जेल अधिकारियों ने बयान दिया कि उन्होंने डा. सेन को कभी भी पत्रवाहक के रूप में कार्य करते हुए नहीं देखा.

कुल मिलाकर वे श्री सान्याल से रायपुर केन्द्रीय जेल में तैंतीस बार मिले और हर बार उन्होंने मिलने से पहले पुलिस से लिखित अनुमति ली थी.

बाद में डा. सेन पर अन्य आरोपों के अलावा राष्ट्रद्रोह, आपराधिक षडयन्त्र रचना, राजद्रोह, राष्ट्रविरोधी गतिविधियों में शामिल होने तथा राज्य के विरुद्ध युद्ध छेड़ने जैसे आरोप लगा दिए गए. सबूतों के तौर पर पुलिस के पास तथाकथित रूप से डा. सेन द्वारा पहुंचाए गए पत्र, माओवादी प्रचार सामग्री जो कि तथाकथित रूप से श्री सेन के घर से बरामद की गई थी. पुलिस यह मानती थी कि डा. सेन जब गांव में आदिवासियों का इलाज करने जाते हैं, तो वे वहां माओवादियों से मिलते हैं तथा वहां से लौटकर जेल में बन्द माओवादी नेता नारायण सान्याल को सूचनाएं पहुंचाते हैं. पुलिस के पास सबूतों के नाम पर बिनायक सेन के कम्प्यूटर से प्राप्त सामग्री थी, जो कि ऐसे दस्तावेज थे जो पहले से ही सार्वजनिक तौर पर उपलब्ध थे, जो पत्र पीयुष गुहा के पास से बरामद करने का दावा किया गया था उनमें जून 2006 में लिखा गया एक पोस्टकार्ड था जो श्री सान्याल ने डा. सेन को अपने स्वास्थ्य के बारे में लिखकर भेजा था, तथा जिस पर रायपुर जेल के अधिकारियों के हस्ताक्षर मौजूद थे, इसके अतिरिक्त कुछ अखबारों की कटिंग थीं तथा कुछ दस्तावेज थे जिन्हें माओवादी प्रचार सामग्री बनाया गया था. 24 दिसम्बर 2010 को रायपुर जिला अदालत ने राजद्रोह के आरोप में डा. सेन को आजीवन कारावास की सजा दे दी. जज के सामने कोई ऐसा सबूत मौजूद नहीं था जिससे यह सिद्ध होता हो कि डा. सेन किसी गैर कानूनी माओवादी संगठन के सदस्य थे अथवा वह राज्य के विरूद्ध हिंसक कार्रवाई में शामिल थे. फैसला आते ही बिनायक सेन को मिली हुई जमानत समाप्त कर दी गयी और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया.

अप्रैल 2011 में, सर्वोच्च न्यायालय ने बिनायक सेन को जमानत पर रिहा कर दिया. सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश एच.एस. बेदी एवं सी.के. प्रसाद ने कहा: “हम एक लोकतांत्रिक देश हैं. इनकी सहानभूति इनके साथ हो सकती है. इससे यह राजद्रोह के दोषी नहीं हो जाते.....राजद्रोह का कोई भी मामला किसी व्यक्ति के पास से मिली सामग्री के आधार पर नहीं बनाया जा सकता, जब तक आप यह सिद्ध न कर दें कि वह सक्रिय रूप से माओवादियों की मदद करते थे अथवा उन्हें शरण देते थे”.

सामाजिक कार्यकर्ताओं को परेशान करना

कार्यकर्ता बताते हैं कि उन्हें माओवादियों और सरकारी सुरक्षाबलों द्वारा धमकियां मिलती रहती हैं. बहुतों ने यह भी बताया कि वे खुद पर हमले से बचने के लिए स्वयं ही अपने पर बंदिशें लगा लेते हैं. उदाहरण के लिए एक युवा आदिवासी कार्यकर्ता ने ह्यूमन राइट्स वाच को बताया कि वो गांव वालों के लिए काम करता है तथा उनको उनके अधिकारों के बारे में बताता है और परिणाम स्वरूप उन्हें माओवादियों और पुलिस दोनो की ओर से बार-बार धमकियां मिलती रहती है:

मैं एक स्थानीय निवासी हूं. मैं कहीं भी जा सकता हूं. लोग मुझे जानते हैं मैं समस्याओं को उठा सकता हूं. मैं लोगों को बता सकता हूं कि अगर किसी को गिरफ्तार किया जाता है या हत्या की जाती है तो उन्हें आवाज जरूर उठानी चाहिए. मैं पुलिस की ज्यादतियों की पोल खोल रहा था इसीलिए वो मुझसे नाराज थे.....पुलिस वाले कहते थे, "तुम हमेशा घूमते रहते हो माओवादी तुम्हें क्यों नहीं मारते?" लेकिन असल में माओवादी भी मुझसे नाराज हैं. स्थानीय नेता कहते हैं मैं लोगों को माओवादियो के खिलाफ भड़का रहा हूं. मैं तो सिर्फ इतना करता हूं कि मैं लोगों को बताता हूं कि उन्हें अपनी जान बचाने के लिए अपनी आवाज उठानी चाहिए. लोग दोनों तरफ की बन्दूक के बीच में फंस गए हैं, और उन्हें कहना चाहिए कि हम तकलीफ में हैं. मुझसे पुलिस ने कहा "हम तुम पर नजर रखे हुए हैं. तुम बहुत बोलते हो, तुम जेल जाओगे. हम तुम्हें हत्या के केस में फंसा देंगे". एक दूसरे पुलिस वाले ने मुझसे कहा: "हमें तुम पर शक है लेकिन हमारे पास कोई सबूत नहीं है. अगर कभी तुम हमारी पकड़ में आ गए तो, हम तुम्हें फर्जी मुठभेड़ में मार देंगे".

एक और कार्यकर्ता ने बताया कि उसको डराने के लिए उसके घर की तलाशी ली गई. मेरे परिवार वाले मेरे बारे में हमेशा डरे हुए रहते हैं. उसने बताया: "सुरक्षा बल मेरे काम को पसन्द नहीं करते. इसीलिए एक दिन वो आए और मेरा घर तोड़ दिया और कहा कि इससे सुरक्षा को खतरा था. मैंने जिले के अधिकारियों से शिकायत की, लेकिन किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया. अब मैं डरा हुआ रहता हूं. मैं अकेले यात्रा नहीं करता क्योंकि मुझे डर है कि मेरी हत्या कर दी जाएगी और एक पक्ष दूसरे पर उसकी जिम्मेदारी डाल देगा. मेरे लिए कोई आवाज नहीं उठाएगा".

पुलिस अपनी आलोचना करने वाले को माओवादी या माओवादी समर्थक कहती है. नंदिनी सुन्दर, जो सर्वोच्च न्यायालय में सलवा जुडुम के मुद्दे पर सरकार के रवैए को चुनौती देती हैं उन्हें बदनाम करने के लिए उनका नाम एक राजनेता के घर पर जुलाई 2010 में हुए हमले के मामले में जोड़ा गया. लेकिन बाद में यह आरोप वापिस ले लिया गया.

एक अन्य याचिकाकर्ता पूर्व विधायक मनीष कुंजाम ने शिकायत की कि उन्हें पर्याप्त पुलिस संरक्षण प्रदान नहीं किया जा रहा है हालांकि उन्हें कई बार फोन पर धमकियां मिल चुकी है. वो आरोप लगाते हैं कि वह लगातार माओवादियों और सलवाजुडुम 'दोनों की हिंसा के विरुद्ध खड़े रहे हैं तथा धोखाधड़ी द्वारा जबरदस्ती लोगों की जमीन छीनने के विरुद्ध तथा कम्पनियों द्वारा अवैध खनन के खिलाफ भी आवाज उठाई है इसीलिए काफी लोग उनके दुश्मन बन गए हैं'.

हिमांशु कुमार का मामला, छत्तीसगढ़

हिमांशु कुमार एक प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्ता हैं. उन्हें विश्वास था कि वो स्वतंत्रतापूर्वक अपना काम कर पाएंगे, क्योंकि उन्होंने लम्बे समय तक सरकार के साथ काम किया था. वो आदिवासियों के बीच काम करने के लिए वर्ष 1992 में छत्तीसगढ़ के बस्तर में आ गए थे. वर्ष 2010 में उन्होंने अपने एक भाषण में कहा कि "आदिवासियों के साथ काम करने के कारण हमें बस्तर से उजाड़ दिया गया. आदिवासी बहुत भयानक सिथति में हैं."

एक जानेमाने मानवाधिकार कार्यकर्ता हिमांशु कुमार छत्तीसगढ़ में वनवासी चेतना आश्रम के खंडहरों से घिरे हुए जिसे पुलिस ने मई 2009 में ढहा दिया था. @2010 शैलेंद्र पांडे/ तहलका

हिमांशु कुमार ने स्थानीय युवकों को अपने साथ जोड़कर 'वनवासी चेतना आश्रम' नाम से एक संस्था बनाई तथा आदिवासियों के लिए सरकार के भोजन एवं स्वास्थ्य से जुड़े व अन्य विकास के कार्यों का क्रियान्वयन करने लगे. उनके सरकार के साथ बहुत अच्छे संबंध थे तथा अपने कार्यों के कारण उस क्षेत्र में उनका काफी सम्मान किया जाता था. हिमांशु कुमार का सरकार के साथ संघर्ष तब शुरू हुआ जब छत्तीसगढ़ सरकार ने वर्ष 2005 में सलवा जुडुम को सहायता देनी शुरू की. ग्रामीणों पर हमलों, बलात्कार, घरों को जलाना और हत्याओं के मामलों में वनवासी चेतना आश्रम ने इन अपराधों के लिए जिम्मेदार लोगों के विरूद्ध शिकायतें भेजनी शुरू की. जब मीडिया और मानवाधिकार कार्यकर्ताओं ने भी पुलिस और सलवा जुडुम समर्थकों में से नियुक्त किए गए विशेष पुलिस अधिकारियों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों के मामलों को सार्वजनिक तौर पर उठाना शुरू किया तो अधिकारी इस निर्णय पर पहुंच गए कि अवश्य ही उनके विरुद्ध यह जानकारियां हिमांशु कुमार द्वारा उपलब्ध कराई जा रही है. इसके बाद सरकार ने

अपनी जवाबी कार्रवाइयां शुरू कर दी. मई 2009 में हिमांशु कुमार के आश्रम को सरकार ने यह कहकर ध्वस्त कर दिया कि यह गैर कानूनी तौर पर वनभूमि पर बनाया गया था. हालांकि वनवासी चेतना आश्रम पिछले अठारह साल से उसी स्थान से अपनी गतिविधियां चला रहा था और सरकार द्वारा कभी कोई आपति नहीं की गई. उसी क्षेत्र में काम को जारी रखने की कोशिश करते हुए हिमांशु कुमार और उनका परिवार दन्तेवाड़ा में एक किराए के मकान में रहने चला गया.

14 दिसम्बर 2009 को सलवा जुडुम के समर्थकों ने हिमांशु कुमार के घर को घेर लिया था. हिमांशु कुमार को दन्तेवाड़ा छोड़कर जाने के लिए धमकाया गया, क्योंकि हिमांशु कुमार ने सलवा जुडुम द्वारा की गई ज्यादतियों के विरूद्ध एक सार्वजनिक कार्यक्रम आयोजित करने की घोषणा कर दी थी. अधिकारियों ने हिमांशु कुमार के घर के चारों तरफ विशेष पुलिस अधिकारियों को नियुक्त कर दिया ताकि उनके घर पर आगे से भीड़ कोई हिंसक वारदात न कर सके. हालांकि इसका असल उद्देश्य हिमांशु कुमार को मुसीबत में पड़े आदिवासियों से मिलने जुलने और उनके मामलों की जांच करने से हिमांशु कुमार को रोकना था. क्योंकि विशेष पुलिस अधिकारियों को साथ लेकर हिंसा पीड़ित आदिवासियों के घर जाने पर, आदिवासी और अधिक खतरे में फंस जाते. पुलिस ने हिमांशु कुमार पर दंगा करने का एक मामला भी बना दिया. हालांकि कोई मुकदमा दायर नहीं किया गया. परन्तु हिमांशु कुमार को अंदेशा हो गया कि उन्हें भविष्य में फंसाया जाएगा.

हिमांशु कुमार के मकान मालिक ने उनसे मकान खाली करने के लिए कह दिया. दूसरे किसी सुरक्षित आवास के अभाव में और भविष्य में पुलिस की ओर से और अधिक आशंकाओं के कारण तथा अपने साथियों के जेल चले जाने तथा अन्य साथियों को लगातार मिल रही धमकियों को देखते हुए हिमांशु कुमार दिल्ली आ गए. हिमांशु कुमार ने ह्यूमन राइट्स वाच को बताया:

दन्तेवाड़ा में स्थानीय प्रशासन ने हमारे कार्यकर्ताओं का गांव तक पहुंचना बन्द करवा दिया था. मेरे लोग अब उस इलाके में कहीं आ जा नहीं सकते थे क्योंकि उन्हें विशेष पुलिस अधिकारियों द्वारा रोका जा रहा था. मैं तथाकथित पुलिस सुरक्षा से घिरा हुआ था जिसके कारण मेरा स्वतन्त्रतापूर्वक कहीं भी आना जाना बन्द हो गया था. सरकार मुझसे

नाराज थी क्योंकि बाहर से आने वाले सभी लोग मुझसे मिलते थे और सरकार अपने अपराधों को छिपा नहीं पा रही थी..... लेकिन यह सब बहुत मुश्किल था. तेरे साथियों को फर्जो आरोप लगाकर गिरफ्तार कर लिया गया था. कुछ पर हत्या के आरोप लगा दिए गए थे. मेरा मकान मालिक बहुत चिनितत था. उन्होंने मेरे खिलाफ दंगा भड़काने का एक मामला दर्ज कर दिया. उन्होंने टीवी के सामने एक नौजवान को पेश किया, जो यह दावा कर रहा था कि वो एक नक्सल है और दावा कर रहा था कि मैं उसकी मदद करता था. हिंसक हमले बढ़ते जा रहे थे, मुझे लगा हमारी रणनीति अब हमारा ही नुकसान कर रही थी. आदिवासियों की रक्षा करने की बजाए हमने उन्हें और ज्यादा मुसीबत में डाल दिया था. दन्तेवाड़ा में काम करने का मतलब था, आदिवासियों पर और ज्यादा हमले, आदिवासियों की और ज्यादा गिरफ्तारियां और ये वही लोग होते जिनकी भी मैं मदद करने की कोशिश करता. मैंने दन्तेवाड़ा छोड़ने का फैसला कर लिया..... मानवाधिकारों का हनन तभी होता है जब, उनके बारे में जनता को जानकारी नहीं हो पाती इस तरह की भयानक घटनाओं को रोकने का यही रास्ता है कि इन्हें सबके सामने उजागर कर दिया जाए. मैंने निश्चय किया कि बस्तर के सुदूर अन्दरूनी गांव में घटने वाली ज्यादातियों के बारे में राजधानी में अदालतों, मीडिया, सामाजिक कार्यकर्ता और नेताओं को अवगत कराया जाए.

करटम जोगा का मामला, छत्तीसगढ़

चालीस वर्षीय करटम जोगा भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य हैं. उन्होंने सलवा जुडुम को छत्तीसगढ़ सरकार द्वारा मदद दिए जाने को चुनौती दिए जाने संबंधित एक याचिका दायर की. इसके तुरंत बाद ही, करटम जोगा की ह्यूमन राइट्स वाच से मुलाकातों के दौरान, पुलिस ने उन्हें और उनके सह आवेदकों को माओवादी समर्थक घोषित कर दिया.

जोगा को 14 सितम्बर 2010 को गिरफ्तार किया गया. उन पर अनेक बम विस्फोटों, हत्याओं और पचत्तहर (75) सी आर पी एफ जवानों पर 6 अप्रैल 2010 को ताड़मेटला क्षेत्र में घात लगाकर हमला करने का मामला बनाया गया.

छत्तीसगढ़ पुलिस ने यह दावा किया कि जोगा की गिरफतारी चश्मदीद गवाहों के बयान के आधार पर की गई है जिन्होंने जोगा को घायल माओवादियों को उठाकर ले जाते हुए देखा था.

जोगा पर राजद्रोह का आरोप भी लगाया गया. उन पर लगाए गए सभी आरोप अब तक अदालतों में लंबित हैं.

ग्लैडसन डुंगडुंग का मामला, झारखंड

एक आदिवासी कार्यकर्ता ग्लैडसन डुंगडुंग कहते हैं कि उन्होंने मार्च 2010 में जबसे झारखंड में आदिवासी समुदाय के उत्पीड़न के मामले उजागर करने शुरु किए हैं तबसे उन्हें सरकारी सुरक्षा बलों द्वारा लगातार डराए धमकाए जाने का सामना करना पड़ रहा है. @2010 विवेक उमराव ग्लेनडेनिंग एमसीआईजे/ दी ग्राउंड रिपोर्ट इंडिया

झारखंड के एक आदिवासी कार्यकर्ता ग्लैडसन डुंगडुंग बताते हैं कि आदिवासियों के अधिकारों के लिए काम करने के कारण अधिकारियों ने उन्हें धमकाने की कोशिश की. हालांकि ग्लैडसन डुंगडुंग के कार्यो को देखते हुए योजना आयोग ने आदिवासियों के विषय में महत्वपूर्ण मुद्धों को निर्धारित करने के लिए उन्हें आमंत्रित किया है. ग्लैडसन डुंगडुंग बताते हैं कि उनकी मुसीबतें तब शुरू हुई जब उन्होंने मार्च-2010 में सुरक्षाबलों द्वारा शुरू किए गए अभियान के दौरान आदिवासियों के उत्पीड़न और अवैध गिरफ्तारियों के विषय में जानकारियां एकत्र करनी शुरू कीं. अभी तक ग्लैडसन डुंगडुंग के खिलाफ कोई मामला दर्ज नहीं किया गया है, परन्तु उन्हें भयभीत करने के लिए उनसे बार-बार यह पूछताछ की जाती है कि उनके माओवादियों के साथ क्या संबंध हैं ? ह्यूमन राइट्स वाच को ग्लैडसन ने बताया कि मुझे प्रताड़ित और शर्मिन्दा करके चुप कराने के बार-बार प्रयत्न किए जा रहे हैं.

एक लिखित व्यक्तव्य में उन्होंने ह्यूमन राइट्स वाच को बतायाः

मुझे बार-बार इस कारण परेशान किया जा रहा है क्योंकि मैं सुरक्षा बलों द्वारा किए जा रहे गम्भीर मानवाधिकार हनन के मामलों को उठा रहा हूँ. मुझे मेरे साथियों समेत रात भर पोटका थाना, जिला पश्चिम सिंगभूम में 15 मई 2010 को हिरासत में रखा गया ताकि हम डरकर खामोश हो जाएं. मैंने भारत के गृहमंत्री पी. चिदम्बरम को पत्र लिखा जिसमें मैंने उन्हें सुझाव दिए कि माओवाद के मुद्दे को कैसे काबू में किया जा सकता है. परन्तु, मेरे सुझावों पर कार्रवाई करने की बजाए, मेरे खिलाफ एक जांच शुरू कर दी गई, कि मेरे और हमारी संस्था झारखंड मूल निवासी जनमंच के माओवादियों के साथ क्या संबंध हैं ?

गृहमंत्रालय ने मेरे विरुद्ध दूसरे दौर की जांच शुरू की. सीबीआई के एक अधिकारी निर्मल कुमार बिरूआ 23 जून 2011 की दोपहर सवा तीन बजे मेरे आवास पर आए तथा उन्होंने मुझसे मेरी गतिविधियों, मेरे आय के साधन, मेरी संस्थाओं और जन-आन्दोलनों के साथ संबंध, मेरे मानवाधिकार संबंधित कामों, मेरे द्वारा प्रकाशित सामग्री, रिपोर्ट, लेख आदि के विषय में कई सारी जानकारियां नोट की. उन्होंने मेरे माता-पिता के बारे में पूछा, मेरे भाइयों और बहनों तथा परिवार के अन्य सदस्यों के वर्तमान पते पूछे. उन्होंने मुझे बताया कि गृहमन्त्रालय की झारखंड इकाई को हर शाम एक रिपोर्ट दिल्ली भेजनी होती है. तथा गृहमन्त्रालय दिल्ली द्वारा मेरे देशद्रोही गतिविधियों में शमिल होने संबंधी तथा देशद्रोही व्यक्तियों के साथ मेरे संबंधो के बारे में जानकारी मांगी जा रही है. हालांकि जब बाद में मैंने इस बारे में जांच की तो मैं भौंचक्का रह गया, क्योंकि रांची में गृहमन्त्रालय का इस प्रकार का कोई कार्यालय ही नहीं है. बल्कि इस प्रकार की जांच आईबी अथवा सीबीआई द्वारा सीधे की जा रही थी.

असल में मैंने अपनी समस्त लिखित सामग्री सार्वजनिक की हुई है तथा मैं अक्सर मीडिया में दिखाई देता हूँ. मैं मानवाधिकार तथा सामाजिक न्याय के मुद्धों को उठाता हूँ इसीलिए मुझ पर देशद्रोह तथा देश द्रोहियों के साथ संबंध रखने जैसे आधरहीन आरोप लगाए जा रहे हैं.....

जब मैंने 29 जून तथा 18 अगस्त 2011 को सारंडा के जंगलों में सुरक्षा बलों द्वारा दो आदिवासियों, मंगल होहंगा और सोमा गुरिया की हत्याओं का मामला उठाया तो कोलहांड के उप महानिरीक्षक नवीन कुमार और अभियान महानिरीक्षक आर. के. मालिक

ने कहा कि मेरा संगठन, झारखंड ह्यूमन राइट्स मूवमेन्ट (JHRM), एक माओवादी संगठन है तथा हम मानवाधिकार हनन के मामले उठाकर सुरक्षा बलों के अभियानों को पटरी से उतारने का प्रयत्न कर रहे हैं.

दण्डपाणी मोहन्ती का मामला, उड़ीसा

फरवरी 2011 में उड़ीसा में माओवादियों ने मलकान गिरी जिले के क्लक्टर आर. वी. कृष्णा और इंजीनियर पवित्र मांझी का अपहरण कर लिया. माओवादियों ने इन्हें छोड़ने के लिए सरकार से बातचीत करने हेतु दण्डपाणी मोहन्ती का नाम घोषित किया. मोहन्ती एक सामाजिक कार्यकर्ता हैं जो आदिवासियों के अधिकारों के लिए काम करते हैं.

क्योंकि माओवादियों ने दण्डपाणी मोहन्ती का नाम सुझाया था इसीलिए पुलिस का सन्देह था कि मोहन्ती भी माओवादी हैं. मोहन्ती के परिवार के सदस्यों को इसके बाद से धमकी भरे फोन आने लगे. मोहन्ती ने ह्यूमन राइट्स वाच से कहाः

जब मैं यात्रा पर जाता हूँ तो वे मेरी गतिविधियों पर नज़र रखते हैं और मेरे परिवार को फोन करके बताते हैं कि मैं अमुक अमुक जगह से वापस नहीं लौटूँगा. एक बार उन्होंने मेरी बेटी से कहा, “उन्हें रोक लो नहीं तो हम उन्हें मार देंगे”.

कुछ गांवो में रहस्मय पोस्टर चिपकाए गए जिन पर लिखा हुआ था कि दण्डपाणी मोहन्ती जवान लड़कियों को माओवादियों के लिए लड़ने हेतु भर्ती करता है. कुछ पोस्टरों में यह भी लिखा गया था कि इन औरतों का माओवादियों द्वारा यौनकर्मियों की तरह इस्तेमाल किया जाता है.

जुलाई 2011 में अपने विरुद्ध सरकार के निर्देश पर अखबारों द्वारा चलाए जा रहे दुष्प्रचार अभियान जिसमें मोहन्ती पर माओवादियों का समर्थक होने का आरोप लगाया गया था तथा जान से मारने की धमकियां दी जा रही थी, के बाद दण्डपाणी मोहन्ती ने एक प्रेस विज्ञप्ति जारी की. इसमें उन्होंने लिखा:

दुष्भावना से प्रेरित होकर जानबूझकर मेरे विरुद्ध सरकार के मार्गदर्शन में एक दुर्भावनापूर्ण अभियान चलाया जा रहा है जिसमें मुझे ‘ब्लैकमेलर’, ‘माओवादी पार्टी के लिए औरतों को भर्ती करने वाला एजेन्ट’ कहकर प्रचारित किया जा रहा है, मुझे गिरफ्तार करने और

फांसी पर लटकाने की मांग की जा रही है. मेरे 43 साल का राजनैतिक जीवन एक खुली किताब रहा है. मैंने हमेशा लोकतांत्रिक और संविधान के दायरे में रहकर काम किया है..... मैंने हमेशा सही उद्देश्यों के लिए किए जाने वाले जन-आन्दोलनों का सक्रिय समर्थन किया है तथा लोगों की आवाज दबाने के लिए सरकार द्वारा किए गए दमन का विरोध किया है. यह कोई नई बात नहीं है, कि इसिलिए मैं सरकार की आंख की किरकिरी बन गया हूँ.

मार्च 2012 में माओवादियों ने दो इतालवी पर्यटकों तथा एक विधायक का उड़ीसा में अपहरण कर लिया, माओवादियों ने मध्यस्थ के तौर पर फिर से मोहन्ती को मध्यस्थता के लिए चुना.

सुझाव

भारत सरकार इस बात पर जोर दे रही है कि वो माओवादी समस्या का समाधान करने के लिए दो मार्गीय नीति अपनाएगी. पहली, प्रभावित क्षेत्र के लोगों तक विकास का लाभ पहुंचाना और दूसरी माओवादियों के विरूद्ध सुरक्षा अभियान चलाना. लेकिन इन क्षेत्रों में सरकार के विकास कार्यक्रमों को जनता तक पहुंचाने में मदद करने वाले कार्यकर्ताओं की रक्षा करने में सरकार पूरी तरह विफल रही है. अपने इन विकास कार्यें के कारण ही कार्यकर्ता माओवादियों की तरफ से भी खतरे में पड़ जाते हैं. और इन कार्यकर्ताओं को सरकारी सुरक्षा बल भी अपना निशाना बनाते हैं क्योंकि वो यह मानते हैं कि ये कार्यकर्ता माओवादियों के समर्थक तथा गोपनीय सदस्य हैं. बहुत से कार्यकर्ताओं को इसीलिए निशाना बनाया जाता है क्योंकि वो सुरक्षा बलों द्वारा किए जाने वाले मानवाधिकार हनन के मामले उठाते हैं.

एक तरफ जहां भारत विश्वभर में सम्मान की नजरों से देखे जाने वाली अपनी न्याय व्यवस्था और सर्वोच्च न्यायालय पर गर्व करता है, वहीं मानवाधिकार संरक्षण के मामले में सरकार बुरी तरह विफल रही है, क्योंकि अदालतों के फैसलों को सरकारी तन्त्र लागू ही नहीं करता है. सरकार इन सुझावों को लागू करते समय यदि सर्वोच्च न्यायलय द्वारा की गई एक टिप्पणी पर ध्यान दे तो वह इसे बेहतर तरीके से लागू कर पाएगी, छत्तीसगढ़ के नागरिकों की ओर से सर्वोच्च न्यायलय में दायर एक मुकदमे में सर्वोच्च न्यायलय ने कहा:

हम यह देखकर स्तब्ध हैं कि छत्तीसगढ़ सरकार संविधान द्वारा खींची गई सीमाओं के प्रति बिल्कुल अंधी हो गई है, और सरकार की तरफदारी करने वाले लोग दावा करते हैं कि हर वो व्यक्ति जो उस राज्य के कई भागों में मौजूद अमानवीय माहौल पर सवाल खड़े करता है उन्हें माओवादी या उनका समर्थक माना जाए और सरकार ऐसा करने के लिए संवैधानिक स्वीकृति भी चाहती है ताकि वह छत्तीसगढ़ की जनता के खिलाफ अपने क्रूर और हिंसक व्यवहार को जारी रख कर संवैधानिक व्यवस्था लागू कर सके.

एक मजबूत न्यायपालिका अकेले ही मानवाधिकारों की रक्षा नहीं कर सकती. इसके लिए सरकार में ऊपर के पदों पर बैठे हुए लोगों को इस बात के लिए प्रतिबद्ध होना पड़ेगा कि वे मानवाधिकार हनन के किसी भी मामले को सहन नहीं करेंगे तथा इस प्रकार के अपराध करने वाले अधिकारियों को तुरन्त सजा दिलवाएँगे. और जो अधिकारी इस प्रकार के हनन को नहीं रोकेंगे, उन्हें तुरन्त हटा दिया जाएगा.

मनवाधिकार आयोग ने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति के मानवाधिकार की सुरक्षा करना, सरकार का कर्तव्य है. कोई भी व्यक्ति, समूह या संस्था जो नागरिकों के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए कार्य कर रहे हैं जिन्हें मानवाधिकार कार्यकर्ता भी कहा जाता है उन्हें भी हर तरह की धमकी, बदले की कार्रवाई, भेदभाव, दबाव अथवा किसी भी तरह की मनमानी कार्रवाई से बचाने के लिए सरकार को कार्य करना चाहिए ताकि, वे लोग आम जनता के मानवाधिकार तथा बुनियादी अधिकारों की रक्षा का अपना कार्य कर सकें.

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा दिए गए सुझावों में से एक मुख्य सुझाव यह है कि मानवाधिकार के संरक्षण के लिए एक ऐसा केन्द्र स्थापित किया जाना चाहिए, जहां मानवाधिकार कार्यकर्ता मदद मांगने के लिए फोन या ई-मेल द्वारा सम्पर्क कर सकें तथा, मानवाधिकार हनन और सताने की शिकायतें आयोग की वेबसाइट में दर्शाई जाएं ताकि उनकी तरफ लोगों का ध्यान खींचा जा सके. अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार कानूनों की जानकारी, हर प्रदेश के मुख्य सचिवों और पुलिस महानिदेशकों और अधिकारियों को दी जाए.

इसके अतिरिक्त ह्यूमन राइट्स वाच निम्न सुझाव भी देता है:

भारत सरकार के लिए सुझाव:

- तुरन्त और पारदर्शी तरीके से शिकायतों की जांच की जाए तथा मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के दमन के लिए जिम्मेदार अधिकारियों के खिलाफ कानूनी कार्रवाई की जाए .
- मानवाधिकार दमन को रोकने के लिए जिन बड़े अधिकारियों ने उचित कार्रवाइयाँ नहीं की, तथा दूसरे अपराधों में झूठ मूठ फंसाने के मामलों में मदद की उनके

खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाइयाँ की जाएँ तथा उन्हें नौकरी से हटाएँ और उन पर मुकदमे चलाए जाएँ .

- सरकार और पुलिस के उच्चाधिकारियों की तरफ से यह संदेश दिया जाना चाहिए कि पुलिस हिरासत में किसी भी तरह का दुर्व्यवहार या प्रताड़ना बर्दाश्त नहीं की जाएगी .सभी अधिकारियों को यह समझना चाहिए कि बल का प्रयोग सिर्फ वहीं किया जाए, जहां शंति और सुरक्षा बनाए रखने के लिए बहुत जरूरी हो या किसी की जान को खतरा हो .

- पूछताछ के दौरान किसी को फर्जी गिरफ्तारी, या फर्जी मुठभेड़ कर मार देने की धमकी, को गैर कानूनी माना जाए. पूछताछ के लिए पुलिस द्वारा निर्धारित नियमों के अन्तर्गत ही पूछताछ की जाए.

- पुलिस को निर्देश दिए जाएं के वो मनमानी गिरफ्तारियां न करें तथा सर्वोच्च न्यालय के डीब .के .सु दिशा निर्देशों का सख्ती से पालन करें तथा इन निर्देशों का पालन न करने वाले अधिकारियों के खिलाफ सख्त कार्रवाई की जाए.

- राजनीति से प्रेरित आरोपों में लोगों को फंसाना तुरन्त बन्द किया जाए .

- न्यायिक अधिकारियों को निर्देश दिए जाएँ कि जिन मामलों में कोई सबूत न हो उन्हें तुरन्त खारिज कर दिया जाए.

- राष्ट्रीय और राज्य सरकारों के अधिकारियों को निर्देश दिए जाएं कि सरकार की आलोचना करने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं को माओवादी समर्थक न माना जाए.

- अधिकारियों को निर्देश दिया जाए कि वे सामाजिक कार्यकताओं को सार्वजनिक तौर पर बदनाम करने के लिए उन पर माओवादियों के साथ उनके संबंधों पर निराधर आरोप न लगाएं क्योंकि उससे उनके काम पर दुष्प्रभाव पड़ता है तथा उनकी जान को खतरा बढ़ जाता है .

- सभी अभियोजकों को निर्देश दिए जाएँ कि वे लोगों द्वारा जमानत मांगे जाने पर उसका विरोध तब तक न करें जब तक ऐसे व्यक्ति के फरार हो जाने तथा लोगों की सुरक्षा के लिए खतरा पैदा हो जाने का डर न हो.

- एक स्वतन्त्र आयोग का गठन किया जाए जो माओवाद प्रभावित क्षेत्र में सामाजिक कार्यकर्ताओं पर पिछले पांच सालों में लगाए गए आरोपों की जांच करे कि कहीं यह आरोप राजनीति से प्रेरित तो नहीं थे ? तथा यह आयोग अपनी रिपोर्ट छह महीने के भीतर संसद में प्रस्तुत करे.

- यह सुनिशिचत किया जाए कि मानवीय और विकास कार्य करने वाली संस्थाओं को माओवाद प्रभावित क्षेत्रों में सुरक्षित और स्वतन्त्र रूप से काम करने दिया जाए तथा उनके घूमने फिरने पर तभी सीमाएं निर्धारित की जाएँ जबकि ऐसा करना तात्कालिक तौर पर सुरक्षा हेतु बहुत आवश्यक हो.

- गिरफ्तारी के दौरान बल प्रयोग के विषय में पुलिस कानूनों तथा नियम पुस्तकों में बदलाव किए जाएँ ताकि वे अंतर्राष्ट्रीय कानूनी मापदंड के अनुरूप बन पाएँ . इनमें संयुक्त राष्ट्र की कानून लागू कराने वाले अधिकारियों के लिए बनी आचार संहिता ,और संयुक्त राष्ट्र की कानून लागू कराने वाले अधिकारियों पर बल प्रयोग और बंदूक के इस्तेमाल के बुनियादी सिद्धांत भी शामिल हों. जहां तक संभव हो पुलिस शुरूआत में अहिंसक साधनों का प्रयोग करे और उचित बल प्रयोग तभी किया जाए जब किसी की जान को बचाने के लिए ऐसा करना जरूरी हो.

- पुलिस पर लोगों का विश्वास बहाल करने के लिए बड़े पैमाने पर सुधार लागू किए जाएँ. मुख्य सुझाव ये हैं:

  - पुलिसढांचे को पूरी तरह बदला जाए तथा उनके काम करने की परिस्थितियों को सुधारा जाए.

  - उनके प्रशिक्षण और साधनों को सुधारा जाए .

  - ऐसी संस्कृति विकसित की जाए जिससे मानवाधिकारों के सम्मान की और व्यावसायिक निष्ठा की भावना पैदा हो.

- ऐसी व्यवस्था बनाई जाए जिसमें पुलिस के दुर्व्यवहार और दमन की शिकायतों की स्वतन्त्र और प्रभावी जांच की जाए.

- संदिग्ध व्यक्ति के अधिकारों के बारे में पढ़ाई करना आवश्यक बनाया जाए.

- प्रताड़ना रोकने के लिए सुरक्षा के प्रावधान किए जाएँ. ऐसी सुरक्षा में, स्वतन्त्र पर्यवेक्षकों द्वारा बिना बताए मौके की जांच करना, पूछताछ की वीडियो रिकार्डिंग करना, शिकायतें सुनने के लिए एक व्यक्ति को नियुक्त करना शामिल हैं.

- उपनिवेशवाद के समय में लागू किया गया राजद्रोह कानून समाप्त किया जाए जो कि सर्वोच्च न्यायलय के निर्देशों के खिलाफ जाकर राजनैतिक विरोधियों के विरुद्ध इस्तेमाल किया जा रहा है. राजद्रोह के सभी लंबित मामले समाप्त किए जाएँ.

- विदेशी मुद्रा विनियम कानून में परिवर्तन किया जाए, ताकि जमीनी स्तर पर काम करने वालों को विदेशी मदद से काम करने में कोई बाधा न हो.

- छत्तीसगढ़ सरकार पर दबाव डाला जाए कि वह छत्तीसगढ़ जन सुरक्षा अधिनियम -2005 को वापिस ले जिसके अन्तगर्त 'गैर कानूनी गतिविधियां' के नाम पर सामाजिक कार्यकर्ताओं और सामाजिक संगठनों पर बंदिश लगाई जा सकती हैं तथा बंदिश लगाई जा रही हैं तथा जो अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार नियमों का सरासर उल्लंघन है.

भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के लिए सुझाव:

- माओवादी सार्वजनिक रूप से यह विश्वास दिलाएँ कि वे अन्तर्राष्ट्रीय मानवाधिकार नियमों का पालन करते हैं तथा अपने प्रभाव क्षेत्र में लोगों को संगठन बनाने व अपने विचार अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता का सम्मान करते हैं.

- अस्पतालों और विद्यालयों पर हमले बन्द किए जाएँ.

- सरकारी विकास कार्य में लगे लोगों और उनके परिवार के सदस्यों के साथ बदले की कार्रवाई रोकी जाए. विकास कार्यों पर लगाई गई रोक हटाई जाए क्योंकि इसका नुकसान हाशिए पर धकेल दिए गए वंचित लोगों को ही भुगतना पड़ता है.
- सैन्य कार्रवाइयों के लिए जबरन भर्ती बन्द की जाए जिसमें बच्चों की भर्ती भी शामिल है.
- नागरिकों को मानव कवच के रूप में इस्तेमाल न किया जाए.
- जन अदालत की कार्रवाइयों को बन्द किया जाए जो मुकदमे के अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप कार्य नहीं करतीं.
- मृत्युदंड देने पर रोक लगाई जाए.

राष्ट्रीय तथा राज्य मानवाधिकार आयोगों के लिए सुझाव:

- स्वतन्त्र रूप से ऐसे मामलों की जांच की जाए जिसमें कानून का पालन करवाने वाले अधिकारियों द्वारा मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के खिलाफ दमन की कार्रवाइयाँ की गई हैं. मानवाधिकार कार्यकर्ताओं के अधिकारों के हनन के मामले में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को अधिकरियों से रिपोर्ट मांगने की बजाए स्वयं जांच करनी चाहिए .यह सुनिश्चित किया जाए कि किसी भी हालत में शिकायत की जांच उसी थाने के अधिकारियों से न कराई जाए जिनके विरुद्ध वह शिकायत की गई है.
- एक जोरदार अभियान चलाकर लोगों को बताया जाए कि उनके संवैधानिक अधिकार, सरकारी अधिकारियों की आलोचना करने का अधिकार, मानवाधिकार हनन के मामलों के दस्तावेज तैयार करने का अधिकार तथा दूसरे के मानवाधिकारों की रक्षा करने के लिए क्या.क्या कानूनी प्रावधान मौजूद हैं-
- हिरासत के दौरान हिरासत में लिए गए व्यक्ति के अधिकारों के विषय में लोगों को जागरूक किया जाए.

विदेशी सरकारो तथा दान दाता संस्थाओं के लिए सुझाव:

- माओवादियों तथा सरकारी सुरक्षा बलों द्वारा सामाजिक कार्यकर्ताओं पर हमलों के समय सार्वजनिक व गोपनीय तौर पर अपनी चिन्ता व्यक्त की जाएँ .और भारत सरकार से मांग की जाए कि वह यह सुनिश्चित करे कि पुलिस का लोगों के साथ व्यवहार अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार मापदंडों के अनुरूप हो.

- इस रिपोर्ट में वर्णित मुद्धों पर केंद्र और राज्य के उच्च अधिकारियों के साथ चर्चा की जाए और उनसे कहा जाए कि इस तरह के दमन के लिए जिम्मेदार अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई की जाए.

- मानवाधिकार के क्षेत्र में काम करने वाली संस्थाओं को अधिक सहायता प्रदान की जाए. भारत सरकार को प्रेरित किया जाए कि वो संस्थाओं द्वारा विदेशी अनुदान प्राप्त करने की क्षमताओं का विकास करने में मदद करे.

- भारत सरकार को प्रेरित किया जाए कि वह अन्तर्राष्ट्रीय क्रूरता एवं प्रताड़ना विरोधी संधि पर हस्ताक्षर करे तथा प्रताड़ना, गायब कर देना और यातना को स्पष्टतपरिभाषित किया जा :ए तथा इन्हें भारतीय दंड संहिता में आपराधिक कृत्य घोषित किया जाए.

- केन्द्र एवं राज्य सरकारों को पुलिस सुधार हेतु मदद का प्रस्ताव दिया जाए. पुलिस द्वारा वर्तमान में चलाए जा रहे आतंक विरोधी प्रशिक्षण कार्यक्रमों के साथ.साथ अन्य विशेष प्रशिक्षण भी शामिल करने का प्रस्ताव दिया जाए-

- भारत सरकार को प्रेरित किया जाए कि वह संयुक्त राष्ट्र के विशेष सूचनादाताओं को बुलाना जारी रखें. भारत प्रताड़ना तथा अन्य क्रूरताओं, अमानवीय और अपमान जनक व्यवहार और सजा पर नियुक्त संयुक्त राष्ट्र के विशेष सूचनादाता को आमंत्रित करे.

- जाँच प्रक्रिया में सुधार हो ताकि मानवाधिकार हनन के गंभीर मामलों में संलग्न व्यक्तियों की शांति रक्षक मिशनों में तैनाती अथवा विदेशों में प्रशिक्षण प्राप्ति पर प्रतिबंध लगाया जा सके .

आभार

इस रिपोर्ट को तैयार करने और इसके लिए शोध करने का कार्य ह्यूमन राइट्स वाच की दक्षिण एशिया की निर्देशक सुश्री मीनाक्षी गांगुली द्वारा किया गया.

इसका संपादन दक्षिण एशिया इकाई के निदेशक ब्रैड ऐडम्स, नीति तथा विधि निर्देशक जेम्स रॉस तथा ह्यूमन राइट्स वाच के कार्यक्रम उपनिदेशक जोसेफ सॉन्डर्स द्वारा किया गया.

शोध सहयोग प्रेमा अब्राहम, और आतिश ठुकराल द्वारा दिया गया.

निर्माण सहयोग एशिया विभाग में दक्षिण एशिया समन्वयक कृति शर्मा, प्रकाशन निदेशक ग्रेस चोई, प्रकाशन विशेषज्ञ कैथी मिल्स, तथा क्रिएटिव मैनेजर ऐना लैप्रियोर ने किया.

ह्यूमन राइट्स वाच उन सभी सामाजिक कार्यकर्ताओं का आभारी है जो साहसपूर्वक अपना कार्य कर रहे हैं तथा जिन्होंने अपने अनुभव हमारे साथ बांटे एवं इस रिपोर्ट को तैयार करने में मदद की.

दो तरफा बंदूकों के बीच

भारत के माओवादी संघर्ष में सामाजिक कार्यकर्ताओं पर हमले !

भारत के मध्य एवं पूर्वी भाग के सामाजिक कार्यकता माओवादी (नक्सलवादी) लड़ाकुओं और सरकारी सुरक्षा बलों के निर्दयी संघर्ष के बीच में फंसे हुए हैं। जब भी कोई कार्यकर्ता किसी भी एक पक्ष के किसी कृत्य की आलोचना करता है तो उस पर दूसरे पक्ष का गुप्त समर्थक होने का आरोप लगाकर सजा के तौर पर दोनों पक्षों द्वारा कार्यकर्ता के जीवन को खतरे में डाल दिया जाता है।

'दोतरफा बन्दूकों के बीच,' एक ऐसा दस्तावेज है जिसमें उड़ीसा, झारखंड और छत्तीसगढ़ के जमीनी कार्यकर्ताओं पर सरकारी सुरक्षा बलों और माओवादियों द्वारा उन्हें धमकाने और उन पर शारीरिक हमलों की घटनाओं का लेखा जोखा दर्ज है। सामाजिक कार्यकर्ताओं को एक ऐसे माहौल में काम करना पड़ रहा है जिसमें उन्हें एक तरफ माओवादियों की ओर से खतरनाक धमकियां मिलती हैं वहीं दूसरी ओर पुलिस की ओर से मनमाने गिरफ्तारी तथा हत्या से लेकर राजद्रोह और षड्यंत्र रचने जैसे राजनीति प्रेरित झूठे आरोपों में फंसा दिये जाने का डर बना रहता है। दोनों ही पक्ष कार्यकर्ताओं से अपने लिए वफादारी और सूचनाएं देने की मांग करते है और जब कोई कार्यकर्ता मुखबिर के रूप में काम करने तथा दमन के सामने झुकने से इंकार कर देता है तो उसे उसका नतीजा भुगतना पड़ता है।

हाल के वर्षों में अधोसंरचना विकास और खनन गतिविधियों हेतु जमीनों के अधिग्रहण के कारण विभिन्न समुदायों के विस्थापन और उनको होने वाली हानि के कारण माओवादियों को इन क्षेत्रों में पर्याप्त जन समर्थन मिल रहा है। सार्वजनिक सेवाओं में भ्रष्टाचार का अर्थ है कि सरकार विकास कार्यों का लाभ लोगों तक पहुंचा पाने में बार-बार विफल हो रही है। इन वास्तविकताओं के कारण कुछ कार्यकर्ता माओवादियों का वैचारिक समर्थन करते हैं। ऐसा समर्थन वहां असंवैधानिक हो जाता है जब कोई व्यक्ति जानबूझकर माओवादियों को ऐसी सूचना या सहायता उपलब्ध कराता है जिससे माओवादियों को हमला करने और दूसरे आपराधिक कृत्य करने में सहायता मिलती हो, ऐसे में अधिकारियों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह ऐसे व्यक्तियों को कानूनी प्रक्रिया के अनुसार

गिरफ्तार कर उन पर मुकदमा चलाएं। हालांकि अधिकारियों को पुखता जानकारियों और विश्वसनीय स्रोतों के आधार पर ही कार्रवाई करनी चाहिये तथा उन्हें ऐसे पूर्वाग्रह नहीं बनाने चाहिये कि जो भी कार्यकर्ता उनकी आलोचना करते है, उनके माओवादियों से संबंध है तथा वे माओवादियों को सहायता देने के अपराध में लिप्त हैं। 'दोतरफा बन्दूकों के बीच,' में सरकार से यह मांग की गई है कि वह सभी कार्यकताओं पर राजनीति से प्रेरित होकर लगाए गए सभी आरोपों को वापिस ले ले तथा अधिकारियों को आदेश कि वे सामाजिक कर्ताओं के खिलाफ हिंसा और उन्हें सताने की कार्रवाइयां बंद कर दें। माओवादी समाजिक कार्यकर्ताओं को धमकाना व उनके अधिकारों का हनन रोक दें तथा सरकार के विकास कार्यों में कार्यरत लोगों के विरुद्ध बदले की कार्रवाइयां न करें।

सामाजिक कार्यकर्ताओं की गिरफ्तारी के विरोध में छात्रों द्वारा जनवरी 2011 में दिल्ली में विरोध प्रदर्शन
© योगेश कुमार / टाइम्स ऑफ इंडिया